CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि. ५३८
१२३२

बाबू अयोध्याप्रसाद
खत्री

6.2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथ-संख्या.....................

(शोध) संस्थान

सी-५

...दया प्रसाद की
...नाथ मिश्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्लेषण-विशेषाङ्क

बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री

हि० ५३६

सम्पादक

प्रो० विद्यानाथ मिश्र, एम० ए०

9232

प्रकाशक

विश्लेषण-कार्यालय

मुजफ्फरपुर (बिहार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रबंध-समिति
प्रो० रमाकान्त पाठक
प्रो० उदयशंकर
श्री प्रजापति खन्ना
कोषाध्यक्ष
श्री बैजनाथ प्रसाद गुप्त

२) तीन... ये

मुद्रक
श्री कपिलेश्वर मिश्र
श्री गोपाल प्रेस, मुजफ्फरपुर (बिहार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पु० सं०. १२३२
नरिया (का० हि० वि०) वाराणसी-५
हि०४३६

महाकवि निराला
को
सादर-सभक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

With poetry still being written in Vrajbhasha and prose adopting 'Khari Boli, as its vehicle Hindi literature progressed on lame legs. This literary dichotomy had to be removed. *What Bhartendu had failed to achieve was made possible mainly by the efforts of Ayodhya Prasad Khatri of Muzaffarpur, who in spite of the fierce opposition of the traditionalists, had the times and the new generations on his side.* Ayodhya Prasad Khatri was an indefatigable missionary in the cause of Khari-Boli, while still quite young he printed a pamphlet entitled Khari-Boli Andolan and distributed it free of cost. His most significant work was the compilation of an anthology of poems in 'Khari-Boli.' It was printed in England and Henry Pincot, an eminent orientalist, wrote a preface to it. *The subsequent period of Hindi literature, in which Vrajbhasha was gradually replaced by Khari-Boli in Hindi Poetry is deeply indebted to the pioneering done in Bihar.*

—*R. R. Diwakar*
Ex-Governor of Bihar.

Bihar through the Ages,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

— क्रम —

१. श्री उमाशंकर
अयोध्या प्रसाद खत्री : एक परिचय १

२. प्रो० विद्यनाथ मिश्र
अयोध्या प्रसाद खत्री की मान्यताओं का मूल्याङ्कन ... १६

३. श्री शारदा प्रसाद भण्डारी
अयोध्या प्रसाद खत्री : एक शब्द चित्र ३०

४, प्रो० रमाकान्त पाठक
खड़ीबोली-पद्य की परम्परा में खत्री जी ४०

५. प्रो० श्रीमती सरोज प्रसाद
अयोध्या प्रसाद खत्री के कृतित्त्व का मूल्याङ्कन ... ६८

६. श्रीमती अभिरामा
खत्रीजी का आन्दोलन और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया ... ७९

७. प्रो० उदय शंकर
अयोध्या प्रसाद खत्री की चारित्रिक विशेषताएँ ... ९१

८. श्री राधारमण टंडन
'खत्री जी के सम्बन्ध में कुछ......' १००

९. श्री महाशंकर
खत्री जी की दृष्टि में राष्ट्रभाषा १११

१०. प्रो० कामेश्वर शर्मा
खड़ीबोली-पद्य का चाणक्य १२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी ओर से

बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री एक ऐसे विस्मृत साहित्यकार हैं, जिन्होंने वर्त्तमान हिन्दी को संकट की स्थिति से उद्धार करने का सर्व प्रथम प्रयास किया था। जिस समय गोरी सरकार की विषैली भाषा-नीति फूल-फल रही थी और जिसके कारण भारतवासियों के बीच वैषम्य की गहरी खाई खुद गयी थी, उस समय खत्रीजी ने अपनी उदार भावना एवं क्रान्तदर्शी चेतना से 'खड़ी बोली' पद्य का आन्दोलन उठाया था। तत्कालीन उर्दू को हिंन्दी की एक शैली घोषित कर उन्होंने अपने समय में ही सरकारी भाषा-नीति की विष वेली की जड़ उखाड़ फेंकी थी यद्यपि इसके लिए उन्हें घोर मानसिक और आर्थिक कष्ट सहने पड़े थे। वे सच्चे अर्थ में हिन्दी सम्बर्धन के लिए जीवन-दानी थे। ऐसे जीवन दानी साहित्यकार को हमलोगों ने अब तक उपेक्षा का ही पात्र बना रखा है! साहित्य-साधकों का सम्मान तो अब तक उनकी मौन-अराधना में ही होता रहा है!

बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री को कई विद्वानों ने 'खड़ी बोली, कविता का ईजादबन्दा कहा है। पता नहीं, उनके इस प्रशंसात्मक सम्बोधन का क्या अभिप्राय था, किन्तु कहने वालों का मुँह बिगाड़ना बहुत उचित नहीं। स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर उतारना जितना कठिन काम था, शंकर के जटा-जूट से और जह्नु की उदर-मंजूषा से उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्त करना उससे कम कठिन काम नहीं था। खत्रीजी खड़ी बोली हिन्दी की काव्य-गंगा के भगीरथ हैं। उनके कमंडलु से यह गंगा प्रकट नहीं हुई, उनकी तपस्या से प्रशस्त और पुरस्सर हुई, अन्यथा उसके मार्ग को ऐरावतों ने रोक लिया था। ऐसे समय में बाबू साहब ने यदि अपने खड़ी बोली प्रेम को आन्दोलन बनाकर प्रकट नहीं किया होता तो हिन्दी का वर्त्तमान रूप और संभावनाएँ सर्वथा भिन्न ढंग की होतीं और संभव है कि उसका अस्तित्व बहुत बड़े खतरे में पड़ जाता।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल सन् १८५० ई० से इतिहास की दृष्टि से आरंभ होता है। आचार्य शुक्ल ने भारतेन्दु बाबू को 'आधुनिक काल' का उन्नायक कहा है। इन्होंने अपने इतिहास के इस काल की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए भारतेन्दु बाबू को इस काल का 'वैतालिक कवि' माना और उन्हीं की स्मृति में इस काल का नाम करण किया। निश्चय ही, रीति काल की शृंगारिक ह्रास-नोन्मिल काव्य धारा में एक युगान्तरकारी मोड़ लाने का श्रेय भारतेन्दु बाबू को मिलना चाहिये। उन्होंने अपनी पूर्ववर्त्ती परम्परा का समादर करते हुए और उसे अक्षुण्ण रखते हुए भी काव्य की आत्मा को नयी चेतना से दीप्त किया था। तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक जीवन का चित्र इन्होंने ही प्रथम-प्रथम काव्य के कमनीय प्रकोष्ट में सजाया। अबतक कविता-कामिनी सामन्तीय विलासिता की रूपा-जीवा-जैसी बनी हुई थी; वह केवल रईसों की मनः तुष्टि की साधना में लगी हुई थी। भारतेन्दु बाबू ने उसे उस कैद से मुक्त किया और उसका सम्बन्ध जनता से स्थापित किया। यह उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि है। फिर भी रीति कालीन शृंगार का मोह उनसे छूटा नहीं था। आचार्य शुक्ल ने उनके सम्बन्ध में लिखा है: "भारतेन्दु बाबू अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओरतो पद्माकर और द्विजदेव की श्रेणी में दिखाई पड़ते थे तो दूसरी ओर बंगदेश के माईकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए भक्तमाल गूँथते दिखलाई देते थे तो दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे।...... प्राचीन और नवीन के उस संधि काल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था, वैसीं ही शीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें सन्देह नहीं।"

यह तो हुई भारतेन्दु की काव्यात्मा की बात, किन्तु जहाँ तक काव्य-प्रक्रिया का प्रश्न था, वहाँ भारतेन्दु बाबू परम्परावादी थे। उनकी दृष्टि संकुचित थी, उनकी प्रवृत्तियों जैसी खुली-खिली नहीं। उन्हें ब्रजभाषा का अगाध मोह था। उससे वे जीवन पर्यन्त मुक्त नहीं हो सके थे। खड़ी बोली गद्य की दिशा में उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया है। जिस प्रकार उन्होंने पद्य के क्षेत्र में नयी भावना तथा राष्ट्रीय चेतना के समावेश के द्वारा एक अभूत पूर्व कार्य किया था, उसी प्रकार खड़ी बोली गद्य कीं अनुर्वर भूमि को गोड़ कर उसे शश्य-सम्पन्न बनाया। उनके पूर्व हिन्दी गद्य की अवस्था अत्यधिक शोचनीय हो गयी थी। वह दो अतिवादी विचारकों के संघष चक्र में पड़कर पिस गया था। एक ओर उसे सितारेहिन्द खींच रहे थे तो दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह। उन दोनों साहित्य महारथियों की भाषा नीति के दाँव पेंच में पड़कर बेचारी खड़ी बोली का गद्य लक्ष्य हीन हो गया था। भारतेन्दु ने ही उपयुक्त समय पर उदित होकर उसे उबारा और उसे एक दिशा दी। इन्हीं सब कार्यों से भारतेन्दु बाबू अपने समय के एक महान् साहित्यिकनेता कहे जाते हैं परन्तु मेरे विचार में केवल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही वह युग पूर्णता को प्राप्त नहीं करता। यों तो इतिहास के लेखकों ने अपनी कलम के जोर से उसे भारतेन्दु काल प्रमाणित कर ही दिया है।

बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री भारतेन्दु बाबू के समकालीन थे और उनके समान ही अक्खड़ साहित्य सेवी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस प्रकार का मौलिक कार्य खड़ी बोली के गद्य के लिये किया वैसाही दिलचस्प काम बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली के पद्य के लिए किया है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक खड़ी बोली हिन्दी के मस्तिष्क हैं तो दूसरे हृदय। अतः खड़ी बोली हिन्दी के इतिहास में दोनों का समान रूप से ही आदर होना चाहिए। दोनों महापुरुषों ने मिलकर खड़ीबोली के साहित्य-भंडार को भरा और आगे का मार्ग प्रशस्त किया है। तो मेरे विचार में न्याय की दृष्टि से उस काल का नाम यदि साहित्यिक नेताओं के नाम परही रखना है तो 'भारतेन्दु-खत्री' युग ही उपयुक्त होगा। इन दोनों में से किसी एक की हिन्दी-सेवा अपने में विकलांग ही कही जाएगी। जैसे सूर और तुलसी में 'को बड़-छोट कहत अपराधू' समझा जाता है उसी प्रकार भारतेन्दु और खत्री जी के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। भक्ति काल जिस प्रकार एक ओर कबीर और जायसी तो दूसरी ओर सूर और तुलसी का समन्वित काल है और इनमें किसी एक की उपेक्षा भक्ति काल की उपेक्षा कही जा सकती है, उसी प्रकार भारतेन्दु के साथ खत्री जी को स्थान न देना 'वर्तमान काल' की उपेक्षा ही कही जायगी।

यदि हिन्दी-जगत को भारतेन्दु-खत्री' युग जैसा व्यापक तथा उदार नाम १८५० ई० से १९०० ई० के समय को देने में संकोच का अनुभव हो तौभी हम भारतेन्दु की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखते हुए खत्री जी के साथ न्याय की एक दूसरी प्रक्रिया भी अपना सकते हैं– वह प्रक्रिया होगी १८८५ ई० से १९०२ ई० तक के समय को 'खत्री काल' कहना। भारतेन्दु बाबू की मृत्यु (१८८५ ई०) तथा आचार्य द्विवेदी की सरस्वती के सम्पादक-पद पर नियुक्ति (१९०३ ई०) के बीच का समय अभी भी इतिहास में समुचित काल-विभाजन की दृष्टि से रिक्त है और यह काल खत्रीजी की हिन्दी-सेवा का काल भी है। इस स्थल पर मुझे यह उद्घोषित करते संकोच नहीं होता कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास-प्रणेताओं ने अबतक खत्रीजी की हिन्दी-सेवा का यथायोग्य सविध आकलन नहीं किया है। बिहार की भूमि में पनपे साहित्यिकों का सदा से कुछ ऐसा ही सौभाग्य रहा है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्यों नहीं, व्यष्ठि-सत्ता के वे दुश्मन जो रहे हैं! इतिहास-लेखकों में भी प्रायः सभी समर्थ विद्वान् बिहारेतर प्रान्त के ही रहे हैं। उन्होंने अन-जाने या जानबूझ कर बिहारी-साहित्यिकों की चर्चा नहीं की है और जहाँ तक बन पड़ा है उन्हें विस्मृति के अन्ध-गह्वर में ढकेल दिया है। यह सभी जानते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी को बिहार की अविस्मरणीय देन रही है। बिहार के महामना विद्वानों ने अपनी भाषा का (मैथिली, मगही, भोजपुरी, वृज्जी (वैशाली के इर्द-गिर्द की जनभाषा) आदि) मोह छोड़ कर खड़ी बोली को केवल अपनाया ही नहीं उसका स्वरूप भी निर्धारित किया है। जिस समय गद्य की भाषा का स्वरूप निर्मित किया जा रहा था उस समय आरा-निवासी पंडित सदल मिश्र ने चन्द्रावली (नासिकेतोपाख्यान) लिख कर खड़ी बोली के विशिष्ट रूप का उदाहरण प्रस्तुत किया था; जिसे बहुत बाद चल कर भारतेन्दु बाबू ने अपनाया और एक व्यवस्थित रूप देने की चेष्टा की। पंडित सदल मिश्र की खड़ी बोली हिन्दी को आचार्य शुक्ल जैसे दाद देने में कृपण आलोचक ने भी आधुनिक गद्य का आदर्श रूप माना है।

खड़ी बोली गद्य की सर्व प्रथम पुस्तक एक बिहारी की ही देन है और खड़ी बोली पद्य का प्रथम आन्दोलन बिहार की भूमि से ही हुआ है। बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री उसके 'अगुआ' हैं। खत्री जी केवल एक आन्दोलन कर्त्ता ही नहीं थे, वे एक साहित्यिक भी थे। गद्य में तो उन्होंने लिखा ही है, पद्य-रचना भी किया करते थे। उन्होंने खड़ी बोली में अनेकानेक प्रकार की कविताएँ लिखी हैं। (उनकी रचनाओं का संग्रह तैयार किया जा रहा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित किया जाएगा।) यह बिहार की मिट्टी का दुर्भाग्य है कि खड़ी बोली के गद्य और पद्य दोनों अंगों के जनकों एवं उन्नायकों का सम्मान हिन्दी-सेवी-संसार ने अब तक नहीं किया है।

प्रशस्ति-प्रेमियों ने कुछ उलटा-सीधा कर अपने लिए स्थान तो बना लिया किन्तु उन निस्स्वार्थ हिन्दी-साधकों की कब्रों को ढाह कर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतिहास उन्हें भूलने के उपक्रम में है। जहाँ तक मुझे मालूम है इन दोनों साधकों के प्रति किसी भी साहित्य-सेवी ने न्याय की कलम नहीं उठायी है। आचार्य शुक्लने सदल मिश्र का उदारता पूर्ण उल्लेख तो किया है परन्तु खत्रीजी की सेवा के लिए उन्होंने अपने इतिहास में उनका एक विकट व्यंग्य-चित्र बना डाला है। ऐसे यदि शुक्ल जी ने बिहार के कवि-साहित्यकारों का उल्लेख नहीं किया तो यह उनकी त्रुटि नहीं कही जा सकती क्योंकि सुदूर प्रान्त में रहनेवाला बिहार के गाँवों के इन सिद्ध कवीश्वरों की जानकारी कहाँ तक प्राप्त कर सकने में समर्थ होता; परन्तु क्षोभ तब होता है जब कि उनके जैसा पंडित ने खत्रीजी की सेवाओं का उचित मूल्याङ्कन नहीं किया है, उस समय के सशक्त कवि महेशनारायण को भूल बैठा है और बाबू रामदीन सिंह जैसे साहित्य धुरीण का जिक्र तक नहीं किया है।

विशेष खेद तो तब होता है जब हम बिहार प्रान्तीय साहित्य सम्मेलनों के अधिवेशनों में दिये गये विद्वानों के अभिभाषणों को पढते हैं और कहीं भी किसी बिहार-विभूति का प्रामाणिक वृतान्त नहीं पाते। ऐसा मालूम होता है कि वे साहित्यकार जैसे विकराल काल की अगाध उदर में प्रविष्ट हो गये हों।

प्रस्तुत संकलन उन्हीं में एक की साहित्य-सेवा का लघु मूल्याङ्कन है। इनके निबंधों का लेखन और प्रकाशन दोनों ही साथ-साथ और अल्पकाल में हुआ है, अतः भूलों का रह जाना स्वाभाविक है। हमारे उदार पाठकों की अभ्यस्त आँखें उन्हें सुधार कर आगे बढ़ेंगी, ऐसा विश्वास है।

गुरुवर आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करके भी हम उनके अशेष ऋण से मुक्त नहीं हो सकते, सदा से जिनका व्यक्त अव्यक्त स्नेह हमारी साहित्यिक-यात्राओं का एक मात्र सम्बल रहा है।

१७-४-५९ —वि० ना० मि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीउमाशंकर

अयोध्या प्रसाद खत्री : एक परिचय

(१८५७—१६०४)

क्रान्ति-पुत्र—

आज से प्राय: १०२ वर्ष पूर्व की घटना है। धरती आग उगल रही थी। राजनैतिक क्षितिज पर असन्तोष के काले-काले बादल छाए हुए थे। धरती के लाल रोटी के लिए बेहाल थे। जनता शोषण एवं अत्याचार की चक्की में पिसी जा रही थी। देश की इस विषम परिस्थिति में बलिया जिला के अन्तर्गत सिकन्दरपुर ग्राम में एक बालक का जन्म हुआ, जिसे हिन्दी संसार ने अयोध्या प्रसाद खत्री के नाम से ग्रहण किया। मैं उसे क्रान्ति-पुत्र कहता हूँ।

१८५७ भारतीय इतिहास में अमर वर्ष है, जिसमें राष्ट्रीयता जन्म पाती है। वह राष्ट्रीयता आगे बढ़कर एक राजनैतिक मंच तैयार करती है, जिस मंच पर खड़े होकर हजारों विघ्न-बाधाओं को झेलते हुए हम स्वतंत्र हुए। साहित्य के क्षेत्र में क्रान्ति-पुत्र अयोध्या प्रसाद खत्री ने भी एक ऐसा ही मंच तैयार किया था, जिसपर खड़े हो हमने आगे चलकर हिन्दी का एक ऐसा रूप निर्मित किया जिसके फलस्वरूप हिन्दी भारत के भाल की बिन्दी बन गयी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिचय—

खत्री जाति ने भारत के आर्थिक विकास में जितना बड़ा योगदान दिया है, उससे कहीं अधिक योगदान साहित्य के क्षेत्र में दिया है। उसी खत्री जाति के अयोध्या प्रसाद जी एक रत्न थे। उनके पूर्वज बलिया जिला के अन्तर्गत सिकन्दरपुर के निवासी थे। यहीं खत्री जी का जन्म हुआ था। पलना से लेकर शैशव तक का समय सिकन्दरपुर में ही बीता। जब वे पढ़ने योग्य हुए तब उनके पिता श्री जगजीवनलाल खत्री उन्हें मुजफ्फरपुर ले आए। वे यहाँ एक व्यवसायी थे। अच्छा कारोबार था। वे विद्वान् तो नहीं थे परन्तु हिन्दी, संस्कृत, और अरबी का उन्हें अच्छा ज्ञान था। वे अपने बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाना चाहते थे। उनके तीन लड़के थे। बड़े का नाम श्री नारायणलाल खत्री, दूसरे का नाम श्री अयोध्या प्रसाद खत्री और तीसरे का नाम श्री द्वारिका प्रसाद खत्री था। श्री नारायण प्रसाद पढ़ने में तेज थे और पिताने उन्हें पढा-लिखा कर वकील बनाया। उनके दूसरे पुत्र अयोध्या प्रसाद खत्री पढने में तो कुशाग्र-बुद्धि थे पर इनका समय पढने से अधिक सेवा-समिति, समाज-सुधार आदि कार्यों में व्यतीत होता था। इसका फल यह हुआ कि इन्हें कोई डिग्री न मिल सकी। परन्तु पीछे चलकर इन्होंने स्वयं इतना अधिक अध्ययन किया कि थोड़े ही समय में अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत और अरबी-फारसी में अपूर्व योग्यता प्राप्त करली। स्कूल में इन्हें अंगरेजी की भी शिक्षा मिली थी। शिक्षा समाप्त करने के बाद इन्होंने अध्यापन कार्य आरंभ किया। पर इनके समय में अध्यापकों को वेतन इतना कम मिलता था कि वे अपने परिवार का पालन ठीक से नहीं कर पाते थे। यही नहीं, एक दन्तकथा उस समय की यह बताई जाती है कि खत्रीजी स्वतंत्र विचार के व्यक्ति थे और उनके अध्यापन कार्य में व्यवस्थापकों की ओर से कुछ व्यवधान होने पर उन्होंने अध्यापन कार्य छोड़ दिया। जो भी कारण हो, वे अध्यापन कार्य छोड़कर कचहरी में लिपिक के पद पर काम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने लगे। अपने परिश्रम और लग्न के चलते वे कलक्टर के पेशकार भी हो गए थे, जिस पद पर वे मरने के दिन तक बने रहे। उनके छोटे भाई द्वारिका प्रसाद ने पिता की देखरेख में अपने व्यवसाय का कार्य आरंभ किया। खेद की बात यह रही कि अयोध्या प्रसाद खत्री और श्री नारायण प्रसाद वकील के जो लड़के हुए वे असमय ही इस संसार से विदा हो गए। उनके परिवार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं बचा, जो उनकी हिन्दी-सेवा सम्बन्धी कृतियों को सुरक्षित रखता। फलस्वरूप वे लुप्त हो गयीं। इस परिवार में केवल दो महिलाएं बची हुई हैं। एक तो खत्री जी की पुत्रवधू है, जो अपने मायके में रहती है, और दूसरी उनके छोटे भाई द्वारिका प्रसाद की पुत्री श्रीमती सरस्वती, जो आजकल अपने पति के घर जब्बलपुर में रहती हैं।

साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश—

खत्री जी भारतेन्दु बाबू से सात वर्ष छोटे थे और वे साहित्य-क्षेत्र में एक प्रवर्त्तक के रूप में उनके मरने के बाद आये। यों तो वे साहित्यिक जगत में १९-२० वर्ष की अवस्था में ही उतरे थे, जब सामाजिक समस्याओं पर निबंध आदि लिखते थे। उनका आगमन गद्य लेकर हुआ था। परन्तु अंत खड़ीबोली कविता के प्रवर्त्तक के रूप में हुआ। भारतेन्दु बाबू का देहान्त १८८५ ई० में हुआ था और महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन १९०३ ई० में हुआ है, जब कि उन्होंने सरस्वती के सम्पादक का कार्य-भार अपने हाथ में लिया। १८८५ ई० से १९०३ का जो समय है वह समय बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री का है। खत्री जी ने द्विवेदी युग के पूर्ववर्त्ती युग को 'श्रीधर पाठक युग' कहा था जिसे पाठक जी ने स्वीकार नहीं किया था। यह घटना कुछ उस तरह की जान पड़ती है जब लोगों ने गांधी जी के जीवन काल में ही 'गान्धीयुग' कहा था। तब उन्होंने उसे अस्वीकार करते हुए उसका नामकरण 'सर्वोदय युग' किया था। हम मानते हैं कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी साहित्य में यह आलोचना का विषय हो जायगा जब कि हम भारतेन्दु और द्विवेदी के बीच के समय को 'पाठक-खत्री युग' कहें, परन्तु ऐसा कहना कुछ अनुचित नहीं होगा। भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी काव्य को नयी चेतना दी थी, उसे जनतांत्रिकता प्रदान की थी, उन्होंने उसे स्वरूप नहीं दिया था। उस समय हिन्दी साहित्य में जो कमी रह गयी थीं, उसे अयोध्या प्रसाद खत्री ने पूरा किया। उन्होंने हिन्दी काव्य को स्वरूप दिया, भाषा दी। मैं स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूँ कि यदि भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी काव्य में भावात्मक क्रान्ति उपस्थित की तो खत्री जी ने हिन्दी काव्य में भाषात्मक क्रान्ति उपस्थित की। यह भी कहा जा सकता है कि भारतेन्दु बाबू ने जिस कार्य को अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए छोड़ दिया था उसे खत्री जी ने पूरा किया और महावीर प्रसाद द्विवेदी के लिए भाषा का प्रश्न नहीं अपितु केवल उसके परिष्कार का भार सौंपा।

(क) मान्यताएँ—

युगान्तरकारी जो भी व्यक्ति होते हैं वे कुछ अपनी मान्यताएँ लिए अपने कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इतिहास के विद्यार्थियों को यह ज्ञात है कि जीवन काल में ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की आलोचनाएँ हुई हैं, उपेक्षाएँ हुई हैं। सुकरात, कार्लमार्क्स और अरस्तु इनमें किसी भी व्यक्ति को युग ने सम्मान नहीं दिया। उनकी मान्यताओं को स्वीकार नहीं किया, परन्तु उनके आलोचक आज धरती पर होते तो पता चलता कि उनकी मान्यताएँ कितनी सत्य और कितनी मूल्यवान थीं। अयोध्या प्रसाद खत्री उन्हीं-जैसे मनस्वियों में थे। उन्होंने भी अपनी मान्यताएँ रखी थीं—अपनी धारणाओं को कार्य रूप में परिणत करने की कोशिश की, पर उन्हें भी उपेक्षा मिली थी। उनकी धारणाओं को गलत समझा गया था और उनकी मान्यताओं पर विचार करने के बदले उन्हें सनकी, जिद्दी आदि की उपाधि दी गयी थी। उन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभा-समितियों में भी अपनी मान्यताओं को लोगों के समक्ष रखने में विरोधों का सामना करना पड़ा था। उनकी मान्यताओं में कुछ इस प्रकार की हैं—

१. खड़ी बोली के पद्य (दूसरा भाग) में उन्होंने ३३ पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका दी है जो खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी और ब्रजभाषा के सम्बन्ध में उनकी धारणा पर अच्छा प्रकाश डालती है। उन्होंने कहा है कि उर्दू हिन्दी की एक स्टाइल है। उनके अनुसार हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ बतलाना भाषा-विज्ञान की बहुत बड़ी भूल है।

२. खत्री जी समझते थे कि फोर्ट विलियम कालेज में जिस हिन्दी का जन्म हुआ है, उसीसे हिदी साहित्य में बहुत बखेड़े उठ खड़े हुए हैं। उन्हें 'प्रेम सागर' की हिन्दी पसन्द नहीं थी। उन्होंने लिखा है कि खड़ीबोली के पहिले लिखैये यदि राय सोहन लाल और राजा शिव प्रसाद होते तो इतना बखेड़ा खड़ा नहीं होता।

३. उनकी यह धारणा थी कि ब्रजभाषा हिन्दी से अलग है। इसी धारणा के चलते उन्होंने यह विचार व्यक्त किया था कि खड़ी बोली के व्याकरण में ब्रज भाषा छन्द को जगह देना और ब्रजभाषा के शब्दों को हिन्दी में 'पोयटिकल लायसेन्स' समझना हिन्दी व्याकरण की मेरी समझ में भूल है।" वे ब्रजभाषा और अवधी कविता को हिन्दी की कविता नहीं मानते थे। यही नहीं, ब्रजभाषा के छन्द को भी वे हिन्दी का छन्द मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने 'खड़ीबोली का पद्य' की भूमिका में स्पष्ट लिखा है "मैं ब्रजभाषा छन्द को हिन्दी छन्द नहीं मानता हूँ। और इसलिए छन्दों के विचार लिखने के पहले हिन्दी छन्द जिसको मैं मानता हूँ इस पुस्तक में दिखलाता हूँ।"

४. हिन्दी के काल विभाजन के सम्बन्ध में भी उनकी अपनी एक धारणा थी। पं० श्रीधर पाठक ने हिन्दी का काल विभाजन किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था। उस काल विभाजन से वे सहमत नहीं थे। अतः उन्होंने अपने निजी पत्र में पाठकजी को लिखा था—"मेरी समझ में हिन्दी के कई काल माने जा सकते हैं। पर गवर्मेन्ट भेद से तीन काल माने जाएँगे और प्रत्येक गवर्मेन्ट में फिर कई काल माने जा सकते हैं। पाठकजी को खड़ी बोली का तीन काल इंगलिश पेरियड में मानना चाहिए १. लल्लू लाल जी की हिन्दी २. राजा शिवप्रसाद और हरिश्चन्द्र की हिन्दी और ३. पं० श्रीधर पाठक की हिन्दी। पहले काल की हिन्दी जो उर्दू का ब्राह्मणकृत संस्कार है, अर्थात् तुलसी-सोना मुँह में लेकर लल्लूलाल जी ने झूठी जवान से प्रेमसागर लिखा है और पद्य ब्रजभाषा का है। दूसरे काल की हिन्दी में फारसी और अरबी के शब्द आए हैं और पद ब्रजभाषा के ही रहे हैं। और तीसरे काल की हिन्दी में पद्य की भाषा पाठकजी ने खड़ी बोली कर देने की चेष्टा की है और यह आशा है कि वह हो जाएगी।

५. खत्रीजी का यह मत था कि अरबी और फारसी के जो शब्द हिन्दी में प्रयुक्त किए जाते हैं उनमें अधिकांश का मूल संस्कृत में है, और उन्हें शुद्ध कर हिन्दी में प्रयुक्त किया जा सकता है। उनके अनुसार कागज़ को कागज लिखना गलत नहीं था। वे मकान के विरोधी नहीं थे पर वे नहीं चाहते थे कि मकानों के बदले मकानात लिखा जाए। वे अरबी और फारसी के शब्दों के हिन्दीकरण में विश्वास करते थे। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने अरबी और फारसी के शब्दों के सम्बन्ध में एक कोष तैयार किया था जिनका मूल रूप संस्कृत है। उस पुस्तक का नाम है, "संस्कृत जनित यवानी शब्दकोष।"

(ख) उद्देश्य—

खत्रीजी का एक मात्र उद्देश्य था कि हिन्दी अधिक से अधिक लोगों की हो सके। अबतक हिन्दी दो सिद्धान्तवादी लोगों के चक्र में पड़ी हुई थी। एक ओर ब्रजभाषा उसे प्रान्तीय बनाकर रखना चाहती थी और दूसरी ओर अरबी और फारसी के शब्दों को भरकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जा रहा था जो देश के लिए सामुदायिक विद्रोह का कारण बन रही थी। फोर्ट विलियम कालेज में 'तासी' की प्रेरणा से गिलक्राइस्ट ने भाषा-विभेद का जो विष-बीजारोपण किया था उसका फल बाद में सभी को दिखाई पड़ा, जो आगे चलकर भारत विभाजन का एक प्रधान कारण बना है। पर अयोध्या प्रसाद जी ने इस खतरे का बहुत पहले ही आभास-सा पा लिया था। अतः उन्होंने एक ऐसी भाषा-नीति अपनायी जिसका एक मात्र उद्देश्य था—दोनों वर्ग में सामंजस्य लाना; और भाषा-विभेद की फैलती ज्वाला का अन्त करना। Pincot ने उनके उद्देश्य के सम्बन्ध में लिखा है—

"His object is to induce his countrymen to abandon the use of the archaic Braj dialect in their poetic effusion and to persuade those who favour and to use Nagari instead of Arabic letters for their verses. In fact, he proposes a compromise. One party is asked to abandon the cherished dialect of their language and other party to give up a customary method of writing it.

(ग) रचनाएँ—

उपर्युक्त उद्देश्यों से प्रेरित खत्री जी ने जो भी रचनाएँ की हैं या जिन रचनाओं को प्रकाशित कराया है वे सब के सब सोद्देश्य हैं।

निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनके निर्माण और प्रकाशन में उनका हाथ था—

१. खड़ीबोली का पद्य (दो भाग)
२. छोटी-छोटी बातों पर नुक्ताचीनी
३. खड़ी बोली का आन्दोलन
४. संस्कृत जनित यवानी शब्दकोश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्द भेद

६. हिन्दी व्याकरण

१. खड़ीबोली का पद्य दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में पिन्कौट ने जो विचार व्यक्त किए हैं वे ऊपर व्यक्त हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन में खत्री जी का यह उद्देश्य था कि यह प्रचारित किया जाए कि ब्रजभाषा के छन्दों को छोड़कर हिन्दी खड़ी बोली में कविताएँ हो सकती हैं।

२. छोटी-छोटी बातों पर नुक्ताचीनी—यह पुस्तिका भी सोद्देश्य लिखी गयी थी। खत्री जी को यह ज्ञात हुआ था कि श्याम सुन्दर दास हिन्दी भाषा का इतिहास लिख रहे हैं। उन्होंने श्याम सुन्दर बाबू को कुछ सुझाव दिए थे परन्तु उनके सुझाव की उपेक्षा की गयी। जनवरी १९०१ की सरस्वती में बाबू श्याम सुन्दर दास का लेख प्रकाशित हुआ। खत्री जी ने उस लेख के विरुद्ध कई तर्कपूर्ण युक्तियाँ दीं और महावीर प्र० द्विवेदी के समक्ष उन्हें रखा और उनसे माँग की कि सरस्वती में प्रकाशित किया जाए। द्विवेदीजी ने कतिपय कारणों से उनका उपयोग नहीं किया उन्होंने खत्रीजी को लिखा कि हर बात में नुक्ताचीनी करना वे छोड़ दें पर खत्री जी ने अपनी मान्यताओं में बल देखा; उन्हें वास्तविकता पर आधारित पाया। 'छोटी-छोटी बातों में नुक्ताचीनी' शीर्षक से कई निबंध लिखकर उन्हें विविध पत्र-पत्रिकाओं में छपवाया। प्रस्तुत पुस्तिका उन्हीं निबंधों का संकलन मात्र है।

३. हिन्दी खड़ी बोली का आन्दोलन—

खत्रीजी की पुस्तक 'खड़ीबोली का पद्य' जब प्रकाश में आया तब उनकी कटु आलोचनाएँ हुईं। उसके सम्बन्ध में वाद-प्रतिवाद आरंभ हुए। १८८७ ई० से १८९० ई० तक अनेक निबंध उसके पक्ष और विपक्ष में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। केवल हिन्दी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वान् ही इसमें शामिल नहीं थे, ग्रियर्सन का भी ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ था। उन्होंने भी अपने कई विचार इस सम्बन्ध में व्यक्त किये थे। श्रीधर पाठक ने खत्री जी के समक्ष यह सुझाव रखा कि इन सभी निबंधों को पुस्तकाकार छपवाया जाए। इसके छापने में यह उद्देश्य था कि खड़ी-बोली के पक्ष को बल मिले।

अन्तिम तीन पुस्तकों का उद्देश्य भी उनकी उन मान्यताओं का प्रतिपादन ही था जिनके द्वारा खत्रीजी ने यह सिद्ध किया कि खड़ी बोली और ब्रजभाषा भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं तथा उर्दू और खड़ी-बोली में कोई अन्तर नहीं है। उन्होंने इन पुस्तकों द्वारा अरबी और फारसी शब्दों का हिन्दीकरण कर नागरी रूपमें उनके प्रयोग का प्रचार किया।

उनकी उपलब्धियाँ—

खत्रीजी के समय विहार में हिन्दी की और नागरी लिपि की एक अजीब परिस्थिति थीं। उनके और उनके अन्य सहयोगियों के प्रयास से फारसी लिपि के साथ कैथी लिपि भी बिहार की कचहरियों में १८८१ से विधिवत् प्रवेश पा गयी। उन लोगों ने अनेक पुस्तिकाएँ, परिचयपत्र, एवं स्मृति-पत्र राज अधिकारियों के समक्ष नागरी लिपि के पक्ष में रखें। यह सत्य है कि नागरी लिपि का प्रवेश कचहरियों में नहीं हो सका पर कैथी लिपि का, जो नागरी लिपि का विकृत रूप थी, प्रवेश हुआ। उस समय जब किसी का ध्यान अँग्रेजी में लिखित साइन बोर्ड (संकेत-पटों) पर नहीं गया था, वे पहला व्यक्ति थे, जिनका ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ था। मुजफ्फरपुर के कई वयोवृद्ध व्यक्तियों ने उन्हें देखा था—उन्होंने बताया है कि वे अपने साथ पेन्टर ले जाकर अँग्रेजी के संकेत-पटों से रोमन अक्षरों को मिटवा कर हिन्दी में लिखवाया करते थे।

खत्रीजी स्वयं तो लिखते ही थे, दूसरोंसे अधिक लिखवाया करतेथे। उन्होंने चम्पारण पत्रिका में एक विज्ञापन छपवाया था कि जो कोई भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खड़ीबोली में कविता लिखेंगे और हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करावेंगे उन्हें समुचित आर्थिक पुरस्कार मिलेगा। 'चम्पारण पत्रिका' में जितनी भी खड़ी बोली की कविताएँ छपीं उनपर उन्होंने दस रुपयों से कम का पुरस्कार नहीं दिया।

खत्रीजी की इच्छा थी कि हिन्दी प्रचारके लिए तीन मासिक पत्रिकाएँ निकाली जाएँ। २६ फरवरी १९०१ को इस सम्बन्ध में उन्होंने श्यामसुन्दर दास को एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनका इरादा एक नहीं तीन पत्र निकालने का है, खड़ी–हिन्दी, अदालती हिन्दी और तिरहुता। बताया जाता है कि तिरहुता और खड़ी–हिन्दी के लिए उन्होंने डेक्लरेशन भी ले लिया था। परन्तु वे इसे कार्य रूप में परिणत कर ही रहे थे कि उनका देहान्त हो गया, जिससे उनकी योजनाएँ पूरी नहीं हुईं।

साहित्यिक संन्यास—

सन् १८९०–१९०० ई० तक खत्रीजी ने साहित्य से संन्यास ले लिया था। उन्होंने खड़ीबोली और हिन्दी-प्रचारके लिए भगीरथ प्रयत्न किया था। खत्रीजी ने उसके प्रचार और प्रसार में जितना आर्थिक खर्च किया था उतना किसी राजे-महाराजे ने नहीं किया था। उन्हें सफलता भी कम नहीं मिली थी। पर अपने परिश्रम एवं आर्थिक व्यय की तुलना में जब वे अपनी सफलता को तौलते थे तो उन्हें असंतोष होता था। खत्रीजी ने साहित्य के लिए भिखारी का रूप धारण कर लिया था। जो कुछ उनके पास था उसका अधिकांश उन्होंने साहित्य प्रचार में लुटाया, परन्तु उनकी झोली में साहित्य के वे फूल नहीं लग सके जिनकी उन्होंने आशा की थी। इसके फलस्वरूप उन्हें खीझ हुई और उन्होंने साहित्यिक संन्यास ले लिया। इस संन्यास की अवधि में उन्होंने साहित्यिक कार्य तो नहीं किया पर साहित्यिक गति-विधियों की ओर अपना ध्यान रखा। वे उसे भूलना नहीं चाहते थे। १९०१ में जब सरस्वती में बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'हिन्दी भाषा का इतिहास'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखना आरंभ किया तो फिर उनकी उदासीन चेतना उद्दीप्त हुई और साहित्य के मैदान में पुनः आ डटे। उनके पुनरागमन पर बाबू श्यामसुन्दर दास ने बधाई दी और श्रीधर पाठक ने अपने १५ फरवरी १९०१ के पत्र में लिखा "आपको कोई नहीं भूला था पर आप हिन्दी को इतने दिनों तक कैसे भूले रहे। हर्ष है कि हिन्दी के प्रेम ने आपके चित्त में पुनः स्थान पाया।"

खड़ीबोली कविता के प्रवर्त्तक—

यों तो इतिहासकार खड़ीबोली की कविताओं के उत्स को अपभ्रंशकालीन कविताओं में भी ढूँढ निकालते हैं। परन्तु खड़ीबोली में विशुद्ध साहित्यिक उद्देश्य से पद्य का निर्माण सिपाही-विद्रोह के बाद की चीज है। भारतेन्दु बाबू ने भी खड़ीबोली की कविताएँ कीं पर उन्होंने स्वयं अपनी पुस्तक 'हिन्दीभाषा' में यह स्वीकार किया है कि खड़ीबोली कविता में वे सफल नहीं हो सके हैं। इसी तरह उन्होंने भारतमित्र के सम्पादक को भी अपनी खड़ीबोली की कविताओं को भेजते हुए लिखा है कि वे अधिक परिश्रम के बाद भी अपनी रुचि के अनुसार इस साधु भाषा में कविता नहीं कर सके हैं। भाषाशास्त्री ग्रियर्सन तथा व्रजभाषा के प्रकाण्ड विद्वान् राधाचरण गोस्वामी तथा सिद्धहस्त कवि राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' तथा जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' तथा सम्पादकाचार्य पं० प्रताप नारायण मिश्र आदि मानते थे कि खड़ी बोली में कविता नहीं हो सकती। उनमें अधिकांश व्यक्तियों का यह विचार था कि खड़ीबोली कविता के लिए गँवारू बोली है। गोस्वामी जी ने तो कई अपशब्द भी उसके लिए प्रयुक्त किए हैं। परन्तु ऐसी परिस्थिति में खत्री जी ने खड़ीबोली कविता के लिए एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया कि उनके विरोधियों को भी आगे चलकर उसी मार्ग का अनुसरण करने को बाध्य होना पड़ा। यह कार्य किसी साधारण व्यक्ति का कार्य नहीं था। यह तो एक प्रवर्त्तक का ही कार्य था कि जहाँ भारतेन्दु बाबू असफल रहें वहाँ खत्रीजी सफल रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खत्री-मण्डल—

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों को यह जानकारी होगी कि खत्री जी एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था थे। उनके अनुयायी, उनके सहयोगी, और उनके समर्थक भी कई व्यक्ति थे जिनके सम्मिलित रूप को हम खत्री-मण्डल कह सकते हैं। इनमें कुछ खत्रीजी के अधिक निकट थे जैसे, पं० भुवनेश्वर मिश्र, महेशनारायण, चन्द्रशेखरधर मिश्र आदि। ये विहार के कवि थे और उनके मण्डल के अन्तर्गत थे। उनके मण्डल के अन्दर न आकर उनका समर्थन करने वालों में श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा, बालमुकुन्द गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि थे।

व्यक्तित्व—

अयोध्याप्रसाद खत्री का जन्म एक ऐसे समय में हुआ था, जब कि देश विद्रोह के पथपर आगे बढ रहा था। अतः विरोध की भावना तो उन्हें विरासत के रूप में जन्म-दिन को ही मिल गयी थी और वे इस विद्रोही-भावना को जीवन भर अपनाए रहे। वे काम करना जानते थे, बाधाओं से घबड़ाते नहीं थे। वे हर काम को सुव्यवस्थित ढंग से करते थे। उनके सम्बन्ध में एक दन्त कथा है कि वे कार्यालय में जब काम करते थे और जब कोई उनके कागजों को इधर-उधर करता था तो उन्हें बिना पूछताछ के ही यह ज्ञात हो जाता था कि किसी ने इधर-उधर अवश्य कर दिया है। वे परिश्रमी थे और लोगों को भी परिश्रमी बनाते थे। वे स्वतन्त्रता-प्रिय व्यक्ति थे। अपनी स्वतंत्रता पर कहीं भी आँच न आए इसका उन्हें ध्यान रहता था। उनके समकालीन व्यक्ति यह बतलाते हैं कि वे अपने पास हमेशा त्याग-पत्र रखते थे। वे अपने सिद्धान्त के बहुत पक्के थे और अपने सिद्धांत के बीच किसी प्रकार का समझौता नहीं जानते थे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे- शिव भक्त थे। उन्होंने मुजफ्फरपुर में एक विशाल शिव मंदिर का निर्माण किया था जो आज भी लोगों को उनकी धार्मिक-प्रवृत्ति की याद दिलाता है। वे कभी-कभी अपने विरोधियों के प्रति कुछ कटु भी हो जाया करते थे। जब उनके सिद्धान्त के विरुद्ध भारतेन्दु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाबू की वे पंक्तियाँ दुहराई जाने लगीं जिनमें उन्होंने अपनी असफलता स्वीकार करली थी तो खत्रीजीने 'भारतेन्दु बाबू को भी नहीं छोड़ा। उनके सम्बन्ध में लिखा कि भारतेन्दु बाबू ईश्वर नहीं थे। उनको शब्द शास्त्र का, फिलोलोजी का कुछ भी बोध नहीं था। यदि फिलोलोजी का ज्ञान होता तो खड़ीबोली में पद्य रचना नहीं होती ऐसा कभी नहीं कहते। यहीं नहीं, उनके मित्र भी अगर उनके सिद्धांत में हस्तक्षेप करते थे तो उनका भी वे पर्दाफास करने को तैयार हो जाते थे। उन्होंने बाबू श्यामसुन्दर दास तथा महाबीर प्रसाद द्विवेदी का ही विरोध नहीं किया, अपने प्रमुख समर्थक श्रीधर पाठक का भी यदाकदा विरोध किया है। उनके एक मित्र श्री जयदेव मिश्र थे। उन्होंने जब उनके मतानुकूल कार्य नहीं किया और उनकी भाषा-नीति की आलोचना की तो खत्रीजी ने निम्नलिखित पंक्तियाँ उनके सम्बन्ध में छपवा कर प्रचारित कीं—

"ऐ पेंचकार जयदेव चमार सार
उल्लू, मरो न डूब चुल्लू भर पानी में।"

पर वे केवल विरोध हीं नहीं करते थे, सम्मान करना भी जानते थे। कविवर श्रीधर पाठक सरकारी काम के सिलसिले में एक बार मुजफ्फरपुर आए थे। खत्रीजी ने जैसा उनका सम्मान किया, वह उन दिनों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने उनके सम्मान में केवल अभिनन्दन पत्र ही नहीं दिया, उनके व्यक्तित्व और कवित्व के सम्बन्ध में शहर में काफी चर्चा करायी।

वे समाज सुधारक भी थे और साथ ही साथ शिक्षाशास्त्री भी थे। उन्होंने खत्री जाति के अन्तर्गत जो खामियाँ थीं, उन्हें दूर करते रहने का भी यत्न किया था। शादी में जो फिजूल खर्ची होती है उसे रोकने का उन्होंने जीवन भर प्रयास किया। दन्त-कथाएँ इस सम्बन्ध में अनेक हैं। उनके समकालीन एक महिला ने, जिनके पिता श्री रूपालाल मेहता, जो खत्रीजी के सरकारी कार्यालय में सहकर्मी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे, मुझे बताया कि खत्रीजी सदैव कहा करते थे कि वे अपने एक मात्र पुत्र श्री जयनारायण खत्री की शादी में फजूल खर्ची को स्वयं रोकेंगे और बेटी वाले को भी खर्च नहीं करने देंगे। पर उनकी यह इच्छा दैवयोग से पूर्ण न हो सकी। अपने पुत्र को नाबालिग अवस्था में ही छोड़कर खत्रीजी ४ जनवरी १९०४ को प्लेग से असमय ही इस संसार से चल बसे। उनके मरने के बाद उनके नाबालिग पुत्र की देख-रेख के लिए कोर्ट ऑफ वार्डस ने एक संरक्षक की नियुक्ति की और वह संरक्षक उनके कार्यालय के सिरिस्तेदार श्री रूपालाल मेहता थे।

हमारा प्रयास : हमारा कार्य-क्रम :—

मुजफ्फरपुर खत्रीजी का कार्य-क्षेत्र था। उनके पिता जी यहाँ आकर बस गए थे। वे सपरिवार यहीं रहते थे। इस तरह से मुजफ्फरपुर खत्रीजीका निवास-स्थान और कार्य-स्थान भी था। मुजफ्फरपुर के लिए उन्हें याद करना स्वाभाविक था। समय-समय पर उनके सम्बन्ध में चर्चाएँ होती रही हैं। इस वर्ष मुजफ्फरपुर से प्रकाशित होने वाली विश्लेषण पत्रिका (साहित्यालोचन की संकलन-पुस्तिका) के तत्त्वावधान में आगामी रामनवमी के दिन खत्रीजी का स्मृति-दिवस मनाने का आयोजन किया गया है। उसके लिए एक समिति, 'खत्री-दिवस-समारोह-समिति' के नाम से संगठित हुई है, जिसके अध्यक्ष बिहार के भूतपूर्व सूचना-मन्त्री तथा बिहार-राज्य खादी-बोर्ड के वर्त्तमान अध्यक्ष श्री महेशप्रसाद सिंह जी हैं और संयोजक हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध समालोचक प्रो० विद्यानाथ मिश्र हैं, जो विश्लेषण पत्रिका के प्रधान सम्पादक और रामदयालु सिंह कालेज मुजफ्फरपुर के प्राध्यापक हैं। उक्त समिति ने उस अवसर के लिए एक पंचसूत्री कार्य-क्रम भी निर्धारित किया है, जो इस प्रकार है—

१ खत्रीजी के स्मृति-चिन्हों की सुरक्षा करना,

२ खत्री-अनुसंधान-परिषद् की स्थापना करना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. प्रत्येक वर्ष उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ खड़ीबोली की कविता-पुस्तक पर देव-पुरस्कार की भाँति खत्री-पुरस्कार देने की व्यवस्था करना,

४. खत्रीजी से सम्बन्धित साहित्य पर आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत करना, तथा

५. मुजफ्फरपुर में खत्रीजी की प्रस्तर मूर्त्ति की स्थापना करना।

इस पंचसूत्री कार्य-क्रम में सहयोग देकर हिन्दी-संसार उनके प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करेगा, ऐसी आशा की जाती है।

हम अपने दायित्व का निर्वाह कई प्रकार से कर सकते हैं अपनी शुभ कामनाओं को भेजकर स्मृति-समारोह-समिति के सदस्यों का उत्साह बढ़ावें; उक्त अवसर पर प्रकाशित होने वाली पुस्तक के लिए उनके सम्बन्ध में निवंध भेजकर उस पुस्तक का गौरव बढ़ावें; उनसे सम्बन्धित जो भी सामग्रियाँ हों (यथा, उनका चित्र उन के पत्र, उनके सम्बन्ध में प्रकाशित रचनाएँ आदि) उन्हें भेजकर तथा उक्त अवसर पर होने वाले समारोह में भाग लेकर खत्रीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रो० विद्यानाथ मिश्र

अयोध्या प्रसाद खत्री की मान्यताओं का मूल्यांकन

भारत में बिहार एक ऐसा प्रान्त है, जिसने, प्रागैतिहासिक काल से ही जब कभी देश में राजनैतिक, धार्मिक या साहित्यिक आन्दोलन छिड़ा है तो सबसे आगे बढकर, उसका सूत्र-संचालन किया है। यहाँ के निवासी अग्रसोची रहे हैं और प्रायः प्रत्येक अवसर पर, जब देश में चेतना ने अंगड़ाई ली और परिवर्त्तन की अपेक्षा की, बिहार ने उसे अपनाया है, कभी भी परम्परा या रूढ़िवादिता का पक्ष समर्थित नहीं किया है। साहित्य के क्षेत्र में भी बिहार की ऐसी ही देन रही है। सिद्ध-सामन्त काल से लेकर आजतक, जब कभी भी साहित्य-क्षेत्र में युगान्तरकारी क्रान्तियाँ या उत्क्रान्तियाँ हुई हैं, बिहार ने उन सब का नेतृत्व किया है। भारतेन्दु काल में जब खड़ी बोली कविता की भाषा में एकरूपता लाने के लिए साहित्यकारों की चिन्ता बढ़ी और प्रयत्न की ओर उनकी उन्मुखता हुई तो बिहार ने ही आगे बढ़कर खड़ी बोली कविता की दुदुंभि फूँकी। यह भी कह सकते हैं कि भारतेन्दु युग में जब कि खड़ी बोली गद्य की भाषा सर्वमान्य हो गयी तो इसे पद्य की भाषा बनाने का आन्दोलन बिहार में ही संगठित हुआ।— आन्दोलन का कर्म–क्षेत्र बिहार की भूमि ही रही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री खड़ीबोली हिन्दी के बहुत बड़े पक्षपाती थे। वे भारतेन्दु जी के समकालीन थे। उन्होंने देखा कि भारतेन्दु बाबू के अथक प्रयास से खड़ी बोली गद्य के लिए प्रमाणित हो चली है, किन्तु पद्य के लिए वह भी अभी कवियों की दृष्टि में अनुपयुक्त ही समझी जा रही थी। भारतेन्दु की भाषा-नीति खत्री जी की चेतना को चुनौती देने वाली थी। गद्य के लिए खड़ी बोली और पद्य के लिए व्रज भाषा का आग्रह लिए भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य के प्राणों में नयी चेतना की दीप्ति तो लायी परन्तु उसके विकास के क्रम को कुछ वर्षों तकके लिए, काव्य-प्रक्रिया में परम्परावादी बने रहने के कारण, गतिहीन अवश्य बना दिया। बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री की नीति गद्य और पद्य की भाषा एक करने की थी। वे एक बड़े ही सजग साहित्यिक थे, अतः उन्हें भारतेन्दु युग की दुरंगी भाषा पसन्द नहीं आयी। उनका एकमात्र उद्देश्य खड़ी बोली हिन्दी का उत्तरोत्तर विकास और प्रसार करना था। यह तभी सम्भव था जब कि खड़ीबोली सामान्य जनता तथा उनकी भावनाओं से सम्बन्ध स्थापित कर चलती। इसके लिए गद्य और पद्य की भाषा में ऐक्य स्थापित होना आवश्यक था। वे समझते थे कि जब बोलचाल की भाषा काव्य-भाषा से मिलती है तभी साहित्य जन-जीवन से प्राण-शक्ति प्राप्त कर पूर्ण विकास को प्राप्त कर सकता है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने सन् १८८७ ई० में खड़ी बोली का पद्य (पहिला भाग) प्रकाशित कराया। फिर दो वर्षों के बाद सन् १८८९ ई० खड़ी बोली का पद्य (दूसरा भाग) छपवाया। इन पुस्तकों में खत्री जी ने खड़ी बोली की विभिन्न शैलियों की रचनाओं को संग्रहीत किया। वे चाहते थे कि तात्कालिक कवि-गण खड़ी बोली की कविता रचने की ओर प्रवृत हों, और खड़ी बोली के विकास में योगदान दें। उनका खड़ी बोली का पद्य (पहिला भाग) खड़ी बोली कविता के आन्दोलन का प्रस्थान-बिन्दु कहा जा सकता है। उक्त पुस्तकों की भूमिकाओं में खत्री जी ने भाषा-शैली के सम्बन्ध में अपनी मान्यताएँ व्यक्त की हैं। उनकी मान्यताएँ कुछ ऐसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थीं जिन्हें लेकर खड़ीबोली के समर्थकों और ब्रज-भाषा के समर्थकों के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ। पद्य के स्वर्ण सिंहासन से ब्रजभाषा को अपदस्थ कर खड़ी बोली को उसपर प्रतिष्ठित करने का श्री गणेश बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने ही किया अतः खड़ी बोली के पताकावाहक बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री को खड़ीबोली-पद्य का 'ईजाद बन्दा' कहा गया। (तृतीय 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' कलकत्ता, संवत् १९७०)।

पद्य की भाषा के लिए ब्रज भाषा का पक्ष-समर्थन करने वाले भारतेन्दु जैसे सुकवियों ने भी उस समय मुसलमानों के हिन्दी विरोध के उग्ररूप को देखकर हिन्दी में गद्य-पद्य के भाषा-ऐक्य का अनुभव किया था और खड़ी बोली तो कोई ऐसी नयी भाषा नहीं थी जिसमें नए सिरे से कविता की जाती। गद्य की अपेक्षा पद्य में खड़ी बोली की परम्परा पुरानी थी। अतः खड़ी बोली को गद्य-भाषा का रूप देने में जितना परिश्रम लगा था उतना तो निश्चित ही पद्य में उसे प्रतिष्ठापित करने में लगता नहीं। फिर भी भारतेन्दु और उनके मंण्डल के कवियों ने इस ओर युग की माँग की दृष्टि से ध्यान नहीं दिया। खड़ी बोली की कविता के प्रति भारतेन्दु की उदासीनता उनके भारत-मित्र के सम्पादक को भेजे हुए १ सितम्बर १८८१ ई० के पत्र से स्पष्ट होती है। उन्होंने लिखा था "....प्रचलित साधु भाषा में कुछ कविता भेजी है, देखिएगा इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है। तीन भिन्न छन्दों में यह अनुभव करने के लिए कि किस छन्द में इस भाषा (खड़ी बोली) का काव्य अच्छा होगा कविता लिखी है। मेरा चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ, और न जाने क्यों ब्रज भाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ। ......लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूँगा।" इस तथ्य को उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा' में भी दुहराया है। 'जो हो मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चय होता है कि ब्रज-भाषा में ही कविता करना उत्तम होता है।' उपर्युक्त कथनों से यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि भारतेन्दु बाबू यह सोचते थे कि खड़ी बोली कविता के लिए उपर्युक्त भाषा नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि उनपर ब्रजभाषा के माधुर्यपूर्ण संस्कार का गहरा प्रभाव था। जिससे खड़ी बोली में कविता उनके मनोनुकूल नहीं बन पा रही थी। बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने इसी प्रश्न को लेकर खड़ी बोली कविता के आन्दोलन का सूत्र पात किया था, इस आन्दोलन के सम्बन्ध में उनका विचार केवल साहित्यिक ही नहीं था, राजनैतिक भी था जो उनकी भाषा सम्बन्धी मान्यताओं से स्पष्ट होता है। खत्री जी ने खड़ी बोली का पद्य (दूसरा भाग, १८८९ ई०) की भूमिका में खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी (उर्दू) और ब्रज भाषा के सम्बन्ध में अपनी धारणाओं एवं मान्यताओं का उल्लेख किया है।

खत्री जी की प्रथम स्थापना थी कि ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों छन्द और व्याकरण की दृष्टि से पूर्णतया पृथक्-पृथक् हैं। उनका कथन था कि "खड़ी बोली के व्याकरण में ब्रज भाषा छन्द को जगह देना और ब्रज भाषा शब्दों को हिन्दी में पोयटिकल लाइसेन्स समझना हिन्दी व्याकरण की मेरी समझ में भूल है।" अतः ब्रज भाषा की कविता हिन्दी की (खड़ी बोली) कविता नहीं मानी जा सकती है। अबतक हिन्दी में कविता बहुत कम हुई है। "हिन्दी पद्य की अवस्थ शोचनीय है।" कवियों को बोल चाल की भाषा में कविता रचना चाहिये। उनकी दूसरी स्थापना थी कि उर्दू और खड़ी बोली में विशेष अन्तर नहीं है। दोनों का व्याकरण एक है। दोनों में केवल लिपि का मुख्य अन्तर है। खत्री जी उर्दू को हिन्दी की एक स्टाइल समझते थे। अतः उर्दू पद्य को खड़ी बोली का पद्य मानते थे। उन्होंने लिखा है—"उर्दू को मैं हिन्दी की एक स्टाइल समझता हूँ, उर्दू पद्य को खड़ी बोली का पद्य मानता हूँ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खत्रीजी की उपर्युक्त मान्यताओं की पृष्ठभूमि तथा उनका राजनैतिक अर्थ समझने के लिए 'उर्दू' भाषा क्या है, और यह नयी भाषा अंग्रेजी सरकार के बहकावे में आकर कौनसी चाल चल रही थी, जान लेना आवश्यक है। खत्रीजी ने अपने समय की साहित्यिक गति-विधि को राजनैतिक चाल से मुक्त कर एक स्वस्थ्य रूप देने की चेष्टा की है।

विद्वानों के मत में मुसलमानों के दक्षिण भारत पर आक्रमण के फलस्वरूप १३४७ ई० में वहाँ बहमनी सल्तनत की स्थापना हुई। कुछ दिनों के बाद १६ वीं शती में बहमनी सल्तनत नष्ट हो गयी और उसके स्थान पर गोलकुण्डा, बीदर, बरार, बीजापुर और अहमदनगर की सल्तनतें कायम हुईं। इन राज्यों के मुसलमान जिस हिन्दी को बोलते थे वह 'दकनी, दक्नी, या दक्खिनी' कहलाई और पद्य में उसका नाम रेख्ता पड़ा। यह भाषा फारसी लिपि में लिखी जाने तथा उसमें अरबी-फारसी के कुछ व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग होते रहने पर भी हिन्दी से जिसे आज हम खड़ी बोली कहते हैं दूर नहीं है। रेख़्ता भाषा में शायरी खड़ी बोली के विकास में एक कड़ी है। औरंगजेब ने जब दक्षिण की इन सल्तनतों को नष्ट-भ्रष्ट किया तब इस राजनैतिक उथल–पुथल का प्रभाव व्यापक रूप से भाषा पर भी पड़ा। उत्तर और दक्षिण के कवि एक दूसरे के सम्पर्क में आए। दिल्ली-दरबार के कवियों को एक विशाल साहित्य हिन्दी की रेख़्ता परम्परा में हाथ लगा। इन कवियों ने इस शैली को अपनाया, किन्तु इन्होंने धीरे-धीरे उसको अरबी और फारसी के परिधान में लपेट कर एक नवीन शैली को जन्म दिया, जिसका आगे चलकर सन् १९०० ई० के लगभग 'उर्दू' नामकरण किया गया। दूसरी ओर, दक्खिनी कवियों पर यह प्रभाव पड़ा कि उनकी भाषा में अरबी-फारसी के अव्यवहृत और कठिन शब्दों का प्रयोग होने लगा। हिन्दीपन जो उस भाषा का वैशिष्ट था, तिरोहित होने लगा। जब उर्दू शायरी का केन्द्र लखनऊ हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब 'नासिख' तथा उसके प्रभाव से अन्य कवियों ने हिन्दी काव्य की रचना की रेखता परम्परा में जो कुछ भी हिन्दपन शेष रह गया था, उसका भी अन्त कर दिया। आचार्य शुक्ल लिखते हैं—'उर्दू की शायरी में जो थोड़ा बहुत हिन्दीपन लुका-छिपा था वह लखनऊ जाने पर 'नसिख' के हाथ से दूर किया गया।'(हिन्दुस्तानी का उद्गम, पृ० ९) तात्पर्य यह कि खुसरो के समय से जिस भाषा का हिन्दी, हिन्दवी नाम से श्री गणेश हुआ था और जो दक्षिण भारत में रेखता के नाम से फलती-फूलती रही वह कालान्तर में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित न हो सकी। एक विचारक के मत से 'उसमें तस्सुब का बाँध बाँध कर एक अलग नहर निकाली गयी।' अंग्रेजों को इससे हिन्दू और मुसलमानों के बीच वैमनस्य की खाई खोदने का एक अच्छा मौका मिला। मि० गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और हिन्दवी के सम्बन्ध को, जिसका प्रयोग हिन्दू और मुसलमान दोनों खुसरो के समय से ही अपनी-अपनी बोली के लिए करते आ रहे थे, सन् १७७८ ई० में हिन्दुओं से जोड़कर मुसलमानों को उससे अलग किया। उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा—'Hinduvee. I have treated as the exclusive property of the Hindus alone." इसी प्रकार ग्रियर्सन ने भी उर्दू का सम्बन्ध इस्लाम से जोड़ा (Islam has carried Urdu far and wide.) और हिन्दी को हिन्दुओं की बोली बताया। (Hindi having been introduced under English influence......is a lingua-franca tot he Hindus.)

मौलवी सुलेमान नदवी ने अपने निबंध 'हमारी जवान का नाम' में अंग्रेजों की भाषा सम्बन्धी इस विषैली नीति की ओर इस भाँति संकेत किया है—"जब अंग्रेजों के इकबाल का सितारा चमका तो फोर्ट विलियम में सियासत के खिलवाड़ियों ने इल्म वो दानिश के पासे फेंके। दूरबीनी से मुल्क की दो कौमों को जो एक हजार साल की मेहनत और जद्दो जहद के बाद एक बनी थी, जिसका तमाद्दन, जिसकी जवान और जिसकी सियासत एक हो रही थी, उसको फिर से दो कौमों में बाँटकर अलहदा २ करने की कोशिशें शुरू कीं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे स्पष्ट है कि अंग्रेज विद्वान् भाषा को माध्यम बनाकर एकही वस्तु में भेद डाल कर, एक राजनैतिक चाल चल रहे थे। उनके उद्योग के फलस्वरूप १९ वीं शती में दो भाषाएँ एक दूसरे के समानान्तर चलने लगी थीं, जो मूलतः एक थीं। खत्री जी ने इसे पहचाना था और अपनी मान्यातात्रों की स्थापना में अंग्रेजों की भेद-नीति को भी ध्यान में रखा था। वे बहुत बड़े राष्ट्र सेवी थे। भाषा की एकता के माध्यम से राष्ट्र-सेवा करना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि जब हमें राजनीति की लड़ाई लड़नी है तो भारत के हिन्दू और मुसलमान भाषा को लेकर आपस में लड़ते रहें और राजनैतिक संग्राम-क्षेत्र में गले-गले न मिलकर अलग-अलग 'अपनी डफली अपना राग' का नारा लगाते रहें।

खत्री जी ने सन् १८८७ ई० में खड़ी बोली कविता का आन्दोलन छेड़ा था। उस समय उनके समक्ष अंग्रेजों की भेद-परक भाषा-नीति स्पष्ट थी। अंग्रेजों की इसी भेद नीति के कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन रहे थे। खत्री जी इसे समूल मिटाना चाहते थे। दूसरी बात कि उनकी इच्छा सरकारी दफ्तरों में देवनागरी लिपि और खड़ी बोली हिन्दी को स्थान दिलवाने की थी। उनके समय में बिहार के सरकारी दफ्तरों में हिन्दी की कैथी लिपि का प्रवेश हो चला था। खत्री जी की भाषा सम्बन्धी मान्यताओं के मूल में कुछ यह भी कारण है। उस वक्त प्रायः सभी हिन्दी प्रेमी चाहते थे कि सरकारी कचहरियों में खड़ी बोली प्रयुक्त हो। इस भावना से प्रेरित हो कर ही कदाचित् खत्रीजी ने, खड़ी बोली का आन्दोलन जोर-शोर से चलाया। अपनी मान्यताओं में उन्होंने ब्रजभाषा को खड़ी बोली अंगीकार नहीं किया तथा उर्दू को खड़ी बोली की एक शैली सिद्ध किया।

भारतेन्दु के यत्न से काव्य का विषय रीतिकालिक शृंगार की संकुचित सीमा से बाहर निकल कर जन-जीवन की ओर उन्मुख हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चला था। गद्यकी आवश्यकता जनतांत्रिक भावना के प्रचार और प्रसार के लिए हुई थी अतः गद्य का पौधा तो खूब ही फूला-फला। पद्य की दशा ज्यों-की-त्यों बनी रही। वह अभी तक ब्रजभाषा का शव-भार ही वहन कर रहा था। एक तो उसकी कोमल आत्मा में सामाजिक तथा राजनैतिक विचारों को गुम्फित करने की शक्ति नहीं थी, दूसरी ओर उसके पक्षपाती खड़ी बोली में कविता करने के विपक्ष में थे। साथ ही साथ उर्दू को यावनी भाषा मानकर ब्रजभाषा प्रेमी उसकी छाया से भी घृणा करने लगे थे। फल यह हुआ कि खड़ी बोली का पद्य-अंग सूखा ही रहा और ब्रज भाषा में गद्य की विरलता तो बहुत पहले से थी ही। दोनों ओर की अपरिहार्य त्रुटियों को देखकर उर्दू के पक्षपातियों को खड़ी बोली को कचहरियों आदि की सरकारी भाषा बनाने के प्रश्न पर 'नुक्ता चीनी तथा विरोध करने का काफी बल मिल रहा था। जब कभी खड़ी बोली को राज्य भाषा बनाने का प्रश्न उठता था तो वे जहाँ हिन्दी की अन्य बुराइयों को दिखाते थे वहाँ यह भी कहते थे कि उर्दू के गद्य और पद्य की भाषा एक है, हिन्दी को तो यह गौरव भी प्राप्त नहीं। अतः यह तो हिन्दी की माँग थी कि उसके गद्य और पद्य की भाषा एक हो, यदि उसे राज्य-भाषा का प्रतिष्ठित पद प्राप्त करना था। खत्री जीने इसे समझा था। हिन्दी विरोधियों का मुँह बन्द करने के लिए ही उन्होंने अपनी मान्यताएँ निर्धारित की थीं। ब्रजभाषा को उन्होंने हिन्दी के अन्तर्गत इसलिए भी स्थान नहीं दिया कि उस समय के हिन्दी के समर्थक खड़ी बोली में कविता लिखकर खड़ी बोली के एक शून्य अंग का सम्बर्धन करें तथा उर्दू को हिन्दी की शैली इस लिए भी मानी थी कि उर्दू के नाम पर मुसलमानों द्वारा विरोध की उग्रता ठंढी परे।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि खत्री जी के समय 'उर्दू' अपना अस्तित्व हिन्दी से अलग करके हिन्दी की प्रतिद्वन्द्विता में आ रही थी। उसकी प्रतिद्वन्द्विता इतनी उग्र थी कि हिन्दी का अस्तित्व ही खतरे में पड़ा हुआ था। उसका मुकावला करने के लिए एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वाङ्गपूर्ण भाषा, जिसमें गद्य और पद्य दोनों हो की आवश्यक थी। ब्रजभाषा में गद्य का नितान्त अभाव था। यदि खड़ी बोली में कविताएँ लिखी जातीं और उर्दू को हिन्दी की शैली के अन्तर्गत ही परिगणित किया जाता तो सम्भव था कि हिन्दी का त्वरित विकास होता। दूसरी बात कि खड़ी बोली पद्य की एक मात्र भाषा स्वीकृत हो जाने पर जन-रुचि का प्रसादन करने लगी थी; अतः काव्य-भाषा के रूप में पल्लवित और पुष्पित होने में उसे ही मौका मिलना चाहिए था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी इसे समझा था इसी लिए काव्य के लिए ब्रज भाषा का घोर आग्रह रखते हुए भी उन्होंने मृत्यु पर्यन्त खड़ी बोली में कविता लिखने का प्रयास किया था। किन्तु, खड़ी बोली कविता के सम्बन्ध में उनका विचार खत्रीजी के विचार से साम्य नहीं रखता था। वे उर्दू को उर्दू समझते थे। खत्रीजी के सामने बिहार में प्रचलित हिन्दी का रूप था। अतः उनके भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण में भारतेन्दु बाबू से विभेद होना स्वाभाविक ही था।

बिहार में हिन्दी की स्थिति ही कुछ ऐसी थी कि खत्रीजी को उपर्युक्त मान्यताओं को लेकर ही आन्दोलनकारी के रूप में हिन्दी सेवा-सदन में प्रवेश करना पड़ा था। बिहार में खड़ी बोली के आधार पर विकसित उर्दू या हिन्दुस्तानी का ही रूप प्रचलित था। पाठशालाओं में शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी थी और कचहरियों में भी इसी भाषा का प्रयोग होता था। यही हिन्दुस्तानी १८८१ ई० के बाद बिहार में यहाँ के शिक्षित लोगों तथा सरकारी लोगों के प्रयत्न से कैथी लिपि में प्रचलित हुई और शिक्षा विभाग के अधिकारियों ने हिन्दुस्तानी में लिखी हुई पुस्तकों को ही पाठ्य ग्रन्थों में स्थान दिया। किन्तु इन पाठ्य पुस्तकों में जहाँ गद्य की भाषा हिन्दुस्तानी थी, पद्य ब्रजभाषा तथा अवधी के थे। अतः स्वाभाविक था कि बिहार से ही हिन्दुस्तानी में पद्य रचना का आन्दोलन हो। खत्रीजी ने खड़ी बोली कविता को समय की माँग के रूप में पहचाना था। उनकी दूरदर्शिता तथा उद्योग की सराहना करते हुए पिनकाट महोदय लिखते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"Babu Ayodhya Prasad Khatri is endeavouring to counter a substantial boon on his countrymen by inducing them to cloth all their ideas in one common form of speech written in one common character." (Preface to Khari Boli ka Padya. Page 8)

खत्रीजी ने अपनी भाषा-शैली सम्बन्धी मान्यताएँ केवल युगकी माँग तथा राजनैतिक स्थिति को ध्यान में ही रखकर नहीं निर्धारित की थीं, उन्होंने एक भाषाशास्त्री का भी दृष्टिकोण अपनी मान्यताओं के स्थापन में अपनाया था। अपने मत के समर्थन में उन्होंने बीम्स, हार्लिक और राजा शिव प्रसाद आदि के मतों को उद्धृत किया है। अपने मत को व्यावहारिक ढंग से युक्तियुक्त सिद्ध करने के लिए खत्रीजी ने खड़ीबोली में मुंशी-स्टाइल (हिन्दुस्तानी) का एक व्याकरण 'हिन्दी व्याकरण' के नाम से लिखा। उसमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि हिन्दुस्तानी में जो यावनी शब्द हैं वे अधिकतर संस्कृत मूल से विकसित हैं और उन्हें विदेशी नहीं समझना चाहिए। उन्होंने 'संस्कृत-जनित यावनी-शब्द संग्रह' नामक एक कोश-ग्रंथ भी सन् १८८७ ई० में प्रकाशित किया। खड़ीबोली के लिए उपयुक्त छन्दों का अभाव देखकर सन् १८८७ में उन्होंने उर्दू छन्दों के संकेत देने के लिए 'मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्द भेद' भी निकाला। इस प्रयास से स्पष्ट है कि खत्री जी को खड़ी बोली कविता के प्रति इतनी ममता थी कि वे उसे किसी भी मूल्य पर विकसित देखना चाहते थे। खत्री जी की मान्यताओं से स्पष्ट है कि वे हिन्दुस्तानी के पक्ष में थे और इसे ही कविता की भाषा के लिए समर्थित किया है। तभी वे उर्दू को हिन्दी की एक स्टाइल समझते थे। खड़ी बोली की मुंशी स्टाइल को समर्थित करने का कदाचित् यह भी कारण था कि वे बिहार के मुजफ्फरपुर जिला के रहने वाले थे, जहाँ की भाषा ब्रजभाषा के प्रभाव से मुक्त थी और जहाँ अंग्रेजी अमलदारी में भी अरबी-फारसी का अध्यापन व्यवस्थित ढंग से होता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ वालों के लिए ब्रजभाषा समझना कठिन था और खड़ीबोली का प्रचार दिनोदिन बढ़ रहा था। बिहार के कायस्थ और मुसलमान मुसलमानी काल से ही फारसी और उर्दू के अभ्यस्त थे। कम्पनी शासन-काल में उर्दू हिन्दुस्तानी के नाम से बिहार की कचहरियों और पाठशालाओं में प्रचलित हो गयी थी। अतः बिहार के अधिकतर शिक्षितों, साहित्यकारों, पत्रकारों और राजकर्मचारियों में हिन्दुस्तानी ही शिष्टभाषा मानी जाती थी। अतः खत्री जी का हिन्दुस्तानी के लिए आग्रह स्वाभाविक था। उन्होंने मुंशी-स्टाइल को हिन्दस्तानी कहा है। खत्री जी की भाषा-नीति के सम्बन्ध में प्राच्य भाषाशास्त्री पिनकौट ने लिखा है—"His object is to induce his contrymen to abandon the use of archaic Braj dialect in their poetic effusion, and to persuade those who favour to use Nagari instead of Arabic letters for their verses. In fact he proposes a compromise, one party is asked to abandon a cherished dialect of their language and the other party to give up a customary method of writing it. By confronting to the compiler's suggestion all parties meet on the common ground of the Khari Boli, or correct speech, understood by all, and living, growing, and changing with the daily requirements of advancing civilizations. (Preface to Khari Boli ka Padya. Pages 5.)

ऊपर की विवेचना से स्पष्ट है कि खत्रीजी ने हिन्दी के हित को ध्यान में ही रखकर उसकी शैलियाँ निश्चित की थीं और सर्वसाधारण में प्रचलित खड़ीबोली की मुंशी-शैली को जो उर्दू या हिन्दुस्तानी थी, काव्य भाषा के लिए उपयुक्त समझा था। खत्रीजी के विचार और उनकी मान्यताएँ भाषा विज्ञान पर आधारित तो थीं ही, युगानुरूप भी थीं। उनकी भाषा-नीति का समर्थन उस समय के पत्रों और विद्वानों ने भी किया है। 'हिन्दी-प्रदीप' खत्रीजी को ही दुहराते हुए लिखता है—"यह कौन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहता है कि उर्दू कोई दूसरी वस्तु है ? सच पूछो तो उर्दू भी हिन्दी का एक रूपान्तर है······जब हम हिन्दुओं ने इसका अनादर कर इसे त्याग दिया तब मुसलमानों ने इसकी दीनता पर दया करके इसे अपने मुल्क के लिबास और जेवरों से आभूषित कर इसका दूसरा नाम उर्दू रखा। तात्पर्य यह कि इस नारी का कुल और गोत्र सदा एक ही रहा समय-समय पर इसका रंग-रूप और भेष अलबत्ता पलटता गया।"

पं० प्रतापनारायण मिश्र ने खत्रीजी की नीति का विरोध किया है फिर भी उर्दू के सम्बन्ध में उनकी जो धारणा थी वह खत्री जी से मिलती-जुलती थी। उनकी राय में "उर्दू का जन्म दिहली की खड़ी बोली ही से हुआ है, आया, गया, हुआ, किया आदि क्रिया अरबी की नहीं हैं, उर्दू के पहिले अवश्य संस्कृत या संस्कृत के अपभ्रंश शब्दों के साथ बोले जाते थे और यही हमारी नागरी या आप की खड़ी बोली का रूप है। मुसलमान लोगों ने अपने समझने को केवल संज्ञावाचक शब्द मिला के हमारी ही खड़ी बोली का नाम उर्दू रख लिया है।"

जान बीम्स ने अपने 'कमपरेटिव ग्रामर आफ माडर्न आर्यन लांगवेज, में लिखा है—"हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ बतलाना भाषा विज्ञान की भूल होगी।" हिन्दी हिमायती श्रीगोविन्द प्रसाद (अलमोड़ा निवासी) ने तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है—'It is indeed a serious mistake to think Urdu a different language from Hindi. It is a part of Hindi, nay, it is Hindi itself. That will be very happy day when we shall see that the very word Urdu is talked of no more. So called Urdu is of course a style of Hindi, and to consider it a different language (if it is at all a different one), is very detrimental to the interest of Hindi.'

तो श्रीगोविन्द प्रसादजी तथा अन्य उल्लिखित विद्वानों के मत से अयोध्या प्रसाद जी की मान्यताएँ समीचीन ही नहीं वैज्ञानिक भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थीं। अपनी मान्यताओं के अनुसार खत्रीजो ने खड़ीबोली पद्य की पाँच शैलियाँ निर्धारित की हैं। उन्होंने इन शैलियों का निर्धारण खड़ीबोली पद्य में उपलब्ध विविध शैलियों के आधार पर किया है। वे हैं—(१) ठेठ हिन्दी, (२) पंडितजी की हिन्दी, (३) मुंशीजी की हिन्दी, (४) मौलवी साहब की हिन्दी, तथा (५) यूरेशियन हिन्दी।

इन शैलियों के उदाहरण खत्रीजी ने अपने 'खड़ीबोली का पद्य' भाग , और भाग २, में उपस्थित किये हैं। ठेठ हिन्दी से खत्रीजी का मतलब खड़ी बोली के उस रूप से था जिसमें विदेशी मूल के शब्द और क्लिष्ट संस्कृत के शब्द-प्रायः नहीं थे। उसमें तद्भव और देशज शब्द अधिक थे। उदाहरण में उन्होंने इंशा उल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' का अंश उद्धृत किया है।

'पंडितजी की हिन्दी' में संस्कृत के शब्द अधिक थे, विदेशी शब्द प्रायः नहीं थे। इस शैली के उदाहरण खत्रीजी ने बाबू लक्ष्मीप्रसाद, और सत्यानन्द की रचनाओं से दिये हैं। मुंशीजी की हिन्दी पंडितजी की हिन्दी और मौलवी साहब की हिन्दी के बीच की हिन्दी थी, जिसको हिन्दुस्तानी कहते हैं। खत्रीजी ने राय सोहनलाल को हिन्दुस्तानी शैली का आदर्श लेखक माना है। मुंशी-स्टाइल के अन्तर्गत हरिश्चन्द्र के दशरथ विलाप, बसंत और वर्सात का उल्लेख खत्रीजीने किया है। महेशनारायण की कविता 'स्वप्न' और मौलवी इल्ताफ हुसैन की कविता 'वेवे की मुनाजात' भी इसी शैली के अन्तर्गत रखी गयी हैं। 'मौलवी साहब की हिन्दी' फारसी-अरबी के शब्दों से भरी थी। इसको मौलवी साहब उर्दू कहकर पुकारते थे। चूँकि खत्रीजी उर्दू को खड़ी बोली की एक शैली मानते थे इसीलिए ऐसी रचनाओं को उन्होंने अपनी शैलियों के अन्तर्गत स्थान दिया है। इस शैली के अन्तर्गत खत्रीजी ने नासिख और आतिश आदि की कविताओं के उदाहरण न रखकर बाबू हरिश्चन्द्र की कविताओं के उदाहरण दिये जिन्हें उन्होंने 'रसा' नाम से लिखा है। यह इसलिए कि खत्रीजी बाबू हरिश्चन्द्र को खड़ीबोली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्य का विरोधी मानते थे। यूरेशियन हिन्दी में हिन्दुस्तानी के शुद्ध शब्दों के बीच-बीच में अंग्रेजी के भी शब्द दिये रहते हैं। इस शैली का भी उदाहरण खत्रीजी ने दिया है।

खत्रीजी ने विभिन्न शैलियों के अन्तगर्त जिन उदाहरणों को रखा है उनमें भावों की विविधता देखी जाती है। उन उदाहरणों से उन्हें यही दिखलाना था कि खड़ी बोली में उपदेशात्मक, धार्मिक, सुधारवादी, राष्ट्रवादी, प्रेम, वीर, करुण आदि विविध भावों एवं विषयों की कविताएँ सफलतापूर्वक रची जा सकती हैं। कविता के लिए खड़ीबोली को योग्य भाषा सिद्ध करने का आन्दोलन खत्री ने ही चलाया। भारतेन्दु बाबू के असमय निधन से हिन्दी संसार बिलकुल शून्य-सा हो गया था। उनके मण्डल के कवियों में नयी उद्भावना की शक्ति नहीं थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि खत्रीजी ने अपने प्रयत्न से खड़ीबोली कविता का प्रवर्त्तन किया। द्विवेदीजी ने बाद में आकर उनके मार्ग का अनुसरण किया है। द्विवेदीजी को श्रेय भाषा में परिमार्जन लाने का है। खड़ीबोली के लिए कविता का क्षेत्र तो खत्रीजीने अपने समय के कवियों की सहायता से काफी उपजाऊ बना दिया था। द्विवेदीजी को तो केवल उसे गोड़ना था, जिस काम को उन्होंने योग्यता पूर्वक किया। प्रवर्त्तन का कार्य तो निश्चित रूप से खत्रीजी ने ही किया है। हिन्दी खड़ीबोली कविता का यह प्रवर्त्तन काल 'खत्री-काल' से संबोधित होना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री शारदा प्रसाद भण्डारी

अयोध्या प्रसाद खत्री : एक शब्द चित्र

कुछ लम्बा-सा पर दुबला-पतला शरीर, लम्बी नाक, बड़ी-बड़ी ओजपूर्ण आखें-कुछ धँसी हुईं ; चिड़चिड़ा स्वभाव, जल्दी-जल्दी बोलने की आदत, कुछ तुतलाहट की ध्वनि, बात-बात में नुक्ताचीनी करने की प्रवृत्ति—

साधारण पहनावा, अस्त-व्यस्त कपड़े, अधिकतर पैर में स्लीपर; कभी-कभी जूते, पर कहचरी जाते समय शमला, अचकन और उस पर चोंगा।

यह चित्र है 'सरस्वती' के वर-पुत्र 'अयोध्या प्रसाद खत्री' का; जिसने हिन्दी में 'खड़ी बोली' की धारा बहा कर स्थापित किया-उसके तट पर अनेक तीर्थों को,-'साकेत, 'पंचवटी' आदि !

× × ×

सन् १८५७ भारत के इतिहास में अपना एक अलग स्थान रखता है। देश में विद्रोह की आग उसी साल भड़की थी। देश को स्वतंत्र करने का व्रत सूरमाओं ने उसी साल लिया था और उसी साल जन्मा 'खड़ी बोली का प्रवर्त्तक' अयोध्या प्रसाद खत्री, विद्रोह की आग लिए, भारत को स्वतंत्र करने के उद्देश्य से,—हिन्दी कविता को एक नयी दिशा देने के लिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खत्रीजी लड़कपन से ही क्रोधी स्वभाव के थे।

मध्यवित्तवाले परिवार में दो भाइयों के बीच उनका जन्म हुआ था। घरवालों ने उनके पढ़ने-लिखने का यथासाध्य प्रबन्ध कर दिया था।

पर लगन जो थी हिन्दी के लिये यद्यपि फारसी, उर्दू और अंगरेजी का भी अभ्यास कराया गया। जितना प्रेम उन्होंने हिन्दी सीखने की ओर दिखलाया, और जितनी जल्दी उन्होंने हिन्दी पढ़ी, उसे देख कर सभी को वड़ा आश्चर्य हुआ।

खत्रीजी को आरम्भ से ही कविता पढ़ने का शौक था। वे व्रजभाषा की कविताओं को पढ़ते तो थे पर उसकी भाषा और शब्द-विन्यास पर बराबर ही सोचते रहते, उसे सरल बनाने पर सदा विचार करते और शुद्ध हिन्दी के प्रचार के लिए अथक परिश्रम करते थे। उन्होंने "यावज्जीवन खड़ी बोली का पद्य में प्रचार" किया और "छंदों से व्रज-भाषा उठा देने का प्रयत्न किया।" (मिश्रबन्धु विनोद)

कौन जानता था कि सुदूर मुजफ्फरपुर नगर का एक साधारण युवक हिन्दी भाषा में 'क्रान्ति' ला देगा जो 'क्रान्ति' हिन्दी को नवीनता देगी और "राष्ट्रकवि" बननेवालों को अपनी भाषा और शैली देगी और देगी प्रोत्साहन वर्त्तमान हिन्दी के महाकाव्यों के रचयिताओं को।

खत्रीजी द्वारा प्रदत्त "क्रान्ति" अक्षरशः सफल हुई। हिन्दी-भाषा और राष्ट्र को "राष्ट्रकवि" मिला, महाकाव्य मिले और खड़ी बोली की धारा "मन्दाकिनी" जैसी शुभ्र और पवित्र हुई और उसी के पुनीत तट पर बैठ कर हजारों-लाखों नर-नारी 'भगवती भारति' की अर्चना में संलग्न हैं।

'हिमालय' भी अपनी गाथा आज खड़ीबोली में सुन रहा है।

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खत्रीजी ने सोचा था कि अध्यापक का पद सम्भाल कर वे हिन्दी की अधिक सेवा कर सकेंगे। अतः उनकी नियुक्ति एक अध्यापक के पद पर हुई। पर जिस काम के लिए उन्होंने नौकरी की थी, उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्होंने उक्त पद से त्यागपत्र दिया और स्थानीय कलक्टरी में एक किरानी के पद पर नियुक्त हुए। पीछे वे मुजफ्फरपुर के कलक्टर के पेशकार हुए।

अपना काम करने में पूरे चौकस—समय पर कचहरी जाना और आना—सुबह-शाम—बहुत रात बीते तक नगर में हिन्दी का अलख जगाना—हिन्दी और खड़ी बोली की चर्चा—यही उन की दिनचर्या थी।

उन दिनों कलक्टर, एस० डी० ओ० तथा अन्य उच्चपदाधिकारी 'गोरे साहब' ही होते थे—फाइलों में अंग्रेजी भाषा का ही व्यवहार होता था—

पर खत्री जी जैसे हिन्दी हिमायती के लिए जो यह धर्म संकट था—गोरे साहबों से वे प्रयत्न कर 'हिन्दी' में ही बोलते और यदि वे नहीं समझते तो अंग्रेजी में अनुवाद कर बातें समझाते थे—पर उन की सदैव यह चेष्टा रहती थी कि 'साहब' को भी हिन्दी का ज्ञान प्राप्त हो—और कभी-कभी तो किसी बेसुरे अंग्रेज से तो 'हिन्दी-प्रेम' के लिए उन्हें झड़प भी खानी पड़ती थी। पर इन 'झड़पों' की तनिक भी पर्वाह न कर वह अपने पथ पर चलता रहा।

× × ×

जिन लोगों ने शमला-अचकन और चोंगा-से लैस-कभी कभी चान्दी के कमानी वाले चश्मे को नाक पर लटकाए खत्रीजी की इस सौम्यमूर्ति को 'दमड़ी मिस्त्री' द्वारा निर्मित इक्के पर—कचहरी के कुछ अस्तव्यस्त फाइलों को लादे—गम्भीर मुद्रा में बैठे—पैर ऊपर इक्के पर रखे—नगर की सड़कों से गुजरते देखा है—वे उसे भूल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं सकते—मालूम पड़ता था कि खत्रीजी किसी घोर चिन्ता में निमग्न हैं—और कहीं तूफ़ान बरपा होनेवाला है। 'काजीजी दुबले क्यों—शहर के अन्देशे से"—यह कहावत खत्रीजी पर अक्षरशः चरितार्थ होती थी।

× × ×

हिन्दी में कविता की अपनी भाषा हो—व्रजभाषा से दूर—यह लगन थी खत्रीजी के हृदय में—भारती ने उन्हें बल दिया—वाणी दी और उन्होंने 'खड़ीबोली' का एक रूप दिया।

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य एवं काव्यग्रन्थ और कविताएँ खत्रीजी की घोर तपस्या के फल हैं।

खड़ीबोली के आन्दोलन ने हिन्दी—संसार में एक तहलका मचा दिया था।

व्रजभाषा के बड़े-बड़े विद्वानों ने इसका घोर विरोध किया था। व्रजभाषा के अनेक महारथियों ने खत्रीजी को पत्र लिखा—और उनमें खड़ीबोली के आन्दोलन की विफलता के सारे दोष पर यथेष्ठ प्रकाश डाला गया—पर वह क्रान्ति-पुत्र अपनी जगह से विचलित नहीं हुआ और पत्र लिखने वालों को फटकार-फटकार कर उनका पोल खोलने लगा—अन्त में लोगों ने उनके पास लिखना छोड़ दिया—कारण खड़ी-बोली—आन्दोलन का वह प्रवर्त्तक सारी विघ्न—बाधाओं को झेलता हुआ—मां सरस्वती के मन्दिर की ओर रोज बढ़ता ही जा रहा था—अपनी अकड़, लगन और विश्वास के साथ।

खत्रीजी ने "खड़ीबोली का आन्दोलन" शीर्षक एक पुस्तिका छप-वायी और उसे बिना मूल्य देश में वितरित किया और जब वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के गृहप्रवेशोत्सव में आमंत्रित होकर काशी गए तो उन्होंने उक्त पुस्तिका का खूब वितरण किया और उसकी प्रतियाँ 'मिश्रबन्धुओं' को भी दीं जिसका उल्लेख मिश्रबन्धु-विनोद में भी मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खत्रीजी जिससे भी मिलते थे खड़ी बोली के विषय में बातचीत अवश्य करते थे, और खड़ीबोली का प्रचार उनके जीवन का उद्देश्य था। 'मिश्रबन्धुओं ने लिखा था—"ऐसे उत्साही पुरुष बहुत कम देखने में आते हैं"। हिन्दी में व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव कर खत्रीजी ने सम्वत् १९३४ में एक व्याकरण-ग्रंथ की भी रचना की थी।

\+ \+ ×

खत्रीजी हिन्दी में लिखे "अशुद्ध" साइनबोर्डों को देख नहीं सकते थे।

मुजफ्फरपुर नगर में उन दिनों बिजली की रोशनी न थी— फिर भी कचहरी से लौटते समय नगर की विभिन्न सड़कों की दूकानों पर लगे 'साइनबोर्डों' का सावधानी से निरीक्षण करते थे।

जहाँ भी किसी अशुद्ध साइनबोर्ड पर नजर पड़ जाती—तुरत इक्के से उतर पड़ते दूकानदार से साइनबोर्ड की अशुद्ध हिन्दी को शुद्ध करने की प्रार्थना करते और यदि उसका रूख प्रतिकूल हुआ तो उसकी आज्ञा लेकर अपने खर्च से—अपने पेन्टर द्वारा—शुद्ध कराकर उसे पुनः टँगवा देते थे।

कलक्टर साहब के पेशकार होने के नाते कभी-कभी जो दूकानदारों के लिए—"अशुद्धि को शुद्ध करा देना"—यही कहना काफी था—खत्रीजी दूकानदारों को साइनबोर्ड की न केवल गल्तियां ही बता देते थे पर स्वयं अपने हाथों से लिखकर क्या शुद्ध-रूप होगा—दे देते थे और उनकी आँखें बराबर सचेष्ट रहती थीं और अशुद्धि—शुद्ध हुई या नहीं इसकी खबर लेती रहती थीं। मुजफ्फरपुर नगर के एक ख्यातनामा वैद्य थे—राजवैद्य पण्डित द्रव्येश्वरनाथजी, जो खत्रीजी के एक अंतरंग मित्र थे। खत्रीजी उनके यहां अक्सर जाते—खड़ी बोली के आन्दोलन की चर्चा चलाते और रात होने पर घर वापस आजाते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन की बात है कि वैद्यजी ने दमे की दवा का एक साइन बोर्ड बनवाया जिसमें पेन्टर की भूल से कुछ अशुद्धियां रह गयी थीं।

उसी दिन संध्या समय खत्रीजी कहचरी से वापसी वैद्यजी के यहां आए और २ १ सीढ़ियों पर चढ़े ही होंगे कि उनकी दृष्टि उक्त साइनबोर्ड पर पड़ी। फिर क्या था, खत्रीजी उल्टे पांव सड़क पर मौजूद थे। आँखें लाल हो रही थीं।

वे गुस्से में सामनेवाली सड़क पर दस डेग आगे जाते और पुनः लौटते, और उसी बोर्ड को घूरते हुए। खत्रीजी को सड़क पर चक्कर काटते हुए देखकर वैद्यजी ने कहा—"पेशकार साहब, क्या बात है? आइए" उन्होंने कहा,—"क्या आऊं, जब आप जैसा व्यक्ति भी हिन्दी की हत्या करता है। आप इस अशुद्ध बोर्ड की हिन्दी शुद्ध कीजिए अन्यथा आज से आप के यहां आना-जाना बन्द।" बोर्ड में लिखा था "दम्मे की अकसिर अच्छा दबा।" वैद्यजी ने गलती महसूस की और बिगड़ती परिस्थिति को सम्भालने की इच्छा से बोर्ड को फौरन ही उतरवा दिया। तब खत्रीजी हाँफते ऊपर आए और धम्म से एक कुर्सी पर बैठ गए। पर उनके चेहरे पर हँसी की रेखा थी, मालूम पड़ता था, जैसे कोई योद्धा लड़ाई के मैदान से विजयी होकर आया हो।

दूसरे दिन बोर्ड का शुद्ध रूप था। खत्रीजी ने स्वयं उसे अपने हाथों से टांग दिया। इसलिए नहीं कि वैद्य जी की दवा खूब बिके पर इसलिए कि अशुद्ध हिन्दी का प्रचार न हो।

यह था खत्री जी का अगाध हिन्दी प्रेम, पता नहीं हिन्दी के इस दीवाने हिमायती की तरह दूसरा कोई हिन्दी-संसार में हुआ या नहीं।

× × ×

खत्रीजी का स्वभाव शुरू से ही आलोचक-जैसा था। खाने-पीने लिखने-पढ़ने और बोलचाल में भी बिना आलोचना किए उन्हें शांति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं मिलती। उनकी इस प्रकृति को पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी ने "खत्रीजी की नुक्ताचीनी करने की प्रवृत्ति कहा है।"

खत्रीजी एकबार काशी गए और एक हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता की दूकान पर जा धमके और कुछ हिन्दी पुस्तकों को उठा-उठा कर देखने लगे। अभाग्यवश—दो—एक पुस्तकों के मुख-पृष्ठ पर ही छापे की कुछ भद्दी भूलें रह गयी थीं जिन्हें देख कर उन्हें क्रोध आ गया और तमक कर बोले—"आप हिन्दी की पुस्तकें बेचते हैं या अशुद्ध हिन्दी का प्रचार करते हैं ? विचारा दूकानदार खत्रीजी की बातों को समझ न सका और उसने नम्रतापूर्वक पूछा—"क्या बात है ?" खत्रीजी ने उन पुस्तकों को इंगित कर उनकी अशुद्धियों को बतला दिया। ऐसा मालूम पड़ा कि खत्रीजी उन अशुद्ध पुस्तकों को पुनः छूकर अपवित्र होना नहीं चाहते थे।

विचारे पुस्तक-विक्रेता का सर झुक गया—पता नहीं, शर्म से उन अशुद्धियों के कारण या श्रद्धा से उस हिन्दी के हिमायती खत्रीजी के प्रति। पुस्तक-विक्रेता ने खत्रीजी से नाम पूछा। उन्होंने कहा—"अयोध्या-प्रसाद खत्री"।

पुस्तक-विक्रेता जो इनके नाम और ख्याति से परिचित था बोल उठा—

"क्या आप हीं बाबू अयोध्या प्रसादजी खत्री हैं ?"

खत्रीजी के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने कहा—

" क्या आप को आज से कबल भी किसी दूसरे अयोध्या प्रसाद खत्री से भेंट हुई थी ?"

पुस्तक-विक्रेता हँस पड़ा और बोला कि जैसा सुनता था ठीक उसी तरह मैंने पाया—बात-बात में आलोचना और नुक्ताचीनी।

फल यह हुआ कि उस पुस्तक विक्रेता ने उन सारी पुस्तकों को जिन में अशुद्धियां थीं अपनी दूकान से हटा दिया और खत्रीजी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह विश्वास दिलाया कि वे पुनः दूकान पर दिखलायी नहीं पड़ेंगी। खत्रीजी ने उन पुस्तकों के मूल्य को देने की चेष्टा की थी पर विचारे पुस्तक-विक्रेता ने अशुद्ध पस्तकों को बेच कर पैसा लेना उचित नहीं समझा। उसने कहा "बाबूसाहब, अब और शर्मिन्दा न कीजिए।"

× × ×

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास उनदिनों स्थानीय जिला स्कूल में संस्कृत और हिन्दी के अध्यापक थे। व्यासजी एक घंटे में १०० श्लोक बनाते थे, आशु कवि थे अतः उन्हें "घटिकाशतक" एवं "शतावधान" की उपाधियाँ मिली थीं। व्यासजीने मुजफ्फरपुर से हिन्दी में 'पीयूष-प्रवाह' नामक एक मासिक पत्र निकाला था। मुखपृष्ठ पर छपा था—

पीयूष-प्रवाह मासिक" व्यासजी उक्त पत्र का एक अंक लेकर खत्रीजी के पास उनकी सम्मति के लिए आए। खत्रीजी ने अंक हाथ में लेते ही कहा—मैं अशुद्ध अंक पर अपनी सम्मति नहीं देता।

व्यासजी, हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान थे पर बात उनकी समझ में नहीं आयी।

खत्रीजी ने—चिड़चिड़ाते हुए स्वर में कहा—

पीयुष का भी कहीं प्रवाह हुआ है और वह भी मासिक?

व्यासजी हँसने लगे—और उन्होंने शुद्ध किया "पीयूष-प्रवाह' मासिक पत्र।

छोटी-छोटी बातों से भी हिन्दी का कितना अहित हो सकता है यह खत्रीजी समझते थे और उन्हें दूर करने की सतत चेष्टा करते रहते थे।

× × ×

खत्रीजी धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे, शिव के बड़े भक्त थे। उन्होंने शिवजी के एक मन्दिर की स्वयं स्थापना की थी और वह वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दिर है जिसका त्रिशूल कुछ वर्ष पहले हिलने लगा था और हजारों की संख्या में नर-नारियों ने जाकर स्वयं उसे देखा और पूजा की आज भी उस मन्दिर का त्रिशूल कभी कभी हिलता दिखायी पड़ता है।

सतुआनी और तिल-संक्रान्त जैसे पव परों जो ब्राह्मण उनके घर आते उनकी बड़ी आवभगत करते, सत्तू-चूड़ा-तिलवा और दक्षिणा से उनका सत्कार करते और यदि उनके पुरोहित उक्त पर्वों पर न आ सकते तो वे उनके घर जा कर सामान दे आते थे। पर उन लोगों से बराबर यही प्रार्थना करते थे कि वे सत्यनारायण भगवान की कथा शुद्ध हिन्दी में कहा करें और बम्बई से प्रकाशित 'सत्यनारायण भगवान्' की छपी पोथियों के बड़े चाव से हिन्दी-अर्थ को शुद्ध कर दिया करते थे।

यदि कथा कहते समय पण्डितजी से भाषा की भूल हो जाती थी तो खत्रीजी उसे तत्क्षण ही शुद्ध कर देते थे।

× × ×

मुजफ्फरपुर में एक दूसरे भी कट्टर हिन्दी प्रेमी थे जिनका नाम था युद्ध-विक्रम-मारूक जिन्हें लोग बाबू झगरूलाल कहा करते थे। मारूकजी स्थानीय हिन्दी-संस्था "नागरी प्रचारिणी सभा" के प्राण थे और खत्रीजी के समसामयिक। दोनों घंटों बैठकर हिन्दी-हित की बातें किया करते थे।

× × ×

कुछ दिनों के लिए खत्रीजी ने हिन्दी-संसार से संन्यास ले लिया पर खड़ी बोली के अन्दोलन ने रूप पकड़ लिया था—

और शायद खत्रीजी दूर से उसकी प्रगति देखना चाहते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९०४ में मुजफ्फरपुर में भीषण प्लेग हुआ और खड़ी बोली का प्रवर्तक और हिन्दी-पुजारी खत्रीजी उसके शिकार हुए और ४ जनवरी १९०४ को उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग किया।

× × ×

खत्रीजी की मृत्यु से हिन्दी-संसार को गहरा धक्का लगा। समवेदना और सहानुभूति के अनेक पत्र उनके एकमात्र पुत्र जयनारायण प्रसाद खत्री के पास आए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती में' शोक-सूचक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी और मिश्र-बन्धुओं ने लिखा-खत्रीजी के अकाल स्वर्गवास से खड़ीवोली के आन्दोलन को बड़ी हानि पहुँची। इस आन्दोलन को पूर्णवल के साथ पहले पहल इन्होंने उठाया। आपने इसमें इतना उत्साह दिखाया कि आप को देखते ही खड़ीबोली की याद आ जाती थी।"—

आइए हम-आप भी श्रद्धा के दो फूल खत्रीजी के चरणों पर चढ़ा• कर अपना जीवन सार्थक करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रो० रमाकान्त पाठक

खड़ीबोली-पद्य की परम्परा में खत्रीजी

वर्त्तमान की विरुदावली अतीत में जाकर ऐतिहासिक सत्य का रूप शायद ही ले पाती हो; वैयक्तिक राग-द्वेष की लिप्तता की चारण-कथा इतिहास बनने के लिए सौ बार पलटी जाती है। पर इस के लिए अपेक्षित जातीय चरित दशकों के किंवदन्ति-मूलक जन-तंत्र की पैदावार नहीं होता, उसके लिए सहस्राब्दियों की मुक्तता, निः-संगता और अविमूढ़ता की अभ्यस्त दृष्टि चाहिए। हमारी पीढ़ी की आगामी दस पीढ़ियों के लिए यह दृष्टि कदाचित् एक सुदूर आदर्श ही बनी रहेगी और इसीलिए, हमारे राजनीतिक किंवा साहित्यिक इतिहास का रचयिता अभी इतना प्रौढ़, आत्मविश्वासी और अना-ग्रही भी नहीं हो सकेगा कि वह सिंहासनस्थ सम्राटों के ऊपर न्याय का सिंहासन डाल कर बैठ जाय और युक्त के स्थान पर योग्य को प्रतिष्ठित करे। यही कारण है कि खड़ी बोली की वर्त्तमान साहि-त्यिक समृद्धि में बाबू अयोध्या प्रसाद खत्रीजी नींव की ईंट की तरह खोए हुए हैं और उन्हें खोदकर निकालना, साहित्य के प्रजापतियों की दृष्टि में बखेड़ों का व्यापार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुजफ्फरपुर नामक यह छोटा-सा शहर हिंदुस्तान के बड़े नक्शे में जिस प्रकार खोया हुआ है, उसी प्रकार इस शहर की ठंढी मिट्टी में दो नरम-गरम दिलों की मासूम धड़कनें खोई हुई हैं। एक का बचपना था कि वह अपने नन्हे हाथों के जोर से अपनी राष्ट्रभूमि को एक और आजाद कर लेगा और दूसरे को सनक थी कि वह अपना सर्वस्व स्वाहा कर अपनी राष्ट्रभाषा की एकता और अखण्डता की रक्षा कर लेगा। राष्ट्र का तन राष्ट्र की भूमि में रहता है और राष्ट्र का मन राष्ट्र की भाषा में। इसलिए, दूरंदेश संगीनशाहों की नजर में, एक ही गुस्ताखी के ये दो पहलू एक-से खटकते रहे। एक के गले में रेशमी फीता का नीला दाग पड़ गया, और दूसरे की गर्दन को प्लेग की गिल्टियों ने जल्लाद के हाथों पड़ने के पहले ही दबोच मारा। फिर शान्ति हो गई। और सौ वर्षों की शान्ति के बाद इस सजायाफ्ता खब्ती को हम जब फिर खोदने चले हैं तो एक की ईंट पलटने में हमारी अहिंसा शर्मा जाती है और दूसरे को देखकर हमारा सत्य झेंप उठता है। खुदीराम को राष्ट्रभूमि भूल जाय और अयोध्या प्रसाद खत्री का ख्याल राष्ट्रभाषा छोड़ दे! मुखबिरों की पीढ़ी में शहीदों का सम्मान इसी प्रकार किया जाता है!

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रभूमि का स्वातन्त्र्य-युद्ध, पता नहीं, कबसे साथ-साथ चलने लगा। किन्तु यह सच है कि जालसाजी के अपराध में राष्ट्रिय स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रथम शहीद महाराज नंदकुमार को हेस्टिंग्स के द्वारा फाँसी दी जा चुकने के बहुत बाद ग्रियर्सन साहब ने फर्माया कि (हिन्दुस्तान की भावी राष्ट्रभाषा) खड़ीबोली भी जालसाजी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[1] यह दूसरी बात है कि उनकी इस घोषणा से ११०० वर्ष पूर्व[2] से ही खड़ीबोली हिन्दुस्तान की सरज़मीन पर बोली जाती रही[3] और यह उनकी कृपालुता कहिए कि उन्होंने इसबार जालसाज को फाँसी की सजा के बजाय फोर्टविलियम कॉलेज में मुन्शी का पद प्रदान करना उचित समझा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं कि खड़ीबोली का साधारण बोलचाल की भाषा के रूप में, पहले पहल, लगभग उसी क्षेत्र में प्रयोग होता था जिस क्षेत्र में उससे पहले क्रमशः शौरसेनी' प्राकृत और अपभ्रंश बोली जाती थी। ४ संभवतः पाणिनि द्वारा व्याकरण-बद्ध शालातुरीय संस्कृत का भी यहीं क्षेत्र था जो कालान्तर में वृहत्तर भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में समादृत हो चुकी थी। इससे स्पष्ट है कि खड़ी बोली भारत की प्राचीन राष्ट्रभाषाओं की समक्षेत्रीय वंशजा थी। इतना ही नहीं, वह भारत के उस भू-भाग की लोक भाषा थी जहाँ से होकर ही विदेशी आगन्तुक, स्थलमार्ग से, देश के शेष भूभागों में पहुँच सकते थे। इसलिए सातवीं-आठवीं शताब्दी में जब मुसलमानों ने इस देश में प्रवेश किया तो भारत की प्रथम जनभाषा के रूप में उनका इसीसे संपर्क होना स्वाभाविक था। शासक मुसलमानों को शासितों की यह भाषा कदाचित् अपने राष्ट्रव्यापी प्रसार और लोकप्रियता के कारण भी पसंद आई होगी तभी उन्होंने शासन और धर्म-प्रचार के लिए उसे स्वीकार कर लिया। 'धीरे-धीरे मुस्लिम राज्य और संस्कृति के विस्तार के साथ-साथ इस खड़ोबोली की व्यापकता और भी बढ़ी। सूफियों का बयान करते हुए डॉ० अब्दुल हक''''''लिखते हैं: "इन बुजुर्गों के घरों में भी हिन्दी बोलचाल का रवाज था और चूँकि यह इनके मुफीदे मतलब था इसलिए वह अपनी तालीम व तकलीन में भी इसीसे काम लेते थे।" जरा "इनके मुफीदे मतलब" इन शब्दों पर ध्यान दीजिए। इनमें साफ़ इशारा धर्मप्रचार की ओर है। धर्म-प्रचार के लिए जनता की बोली से बढ़कर कोई साधन नहीं हो सकता। इसीलिए महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध ने संस्कृत (छन्दस्) का पल्ला न पकड़कर प्राकृतें अपनाईं। गोरख, कबीर, तुलसीदास ने जनपदी बोलियाँ लीं।' ५

धर्म की भाँति, साहित्य के क्षेत्र में भी यह भाषा मुस्लिम सामन्तों और कवियों की कृपा से प्रतिष्ठित हुई। इस बोल चाल की भाषा का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरातन साहित्य अपनी मुखस्थता में खोकर खप चुका है किन्तु उसके लिखित साहित्य की मुस्लिम-कालीन रचनाओं से पता चलता है कि उत्तर भारत की देशी-भाषाओं के साहित्य में वह सबसे प्राचीन साहित्यिक प्रतिष्ठा की भाषा है। 'हिन्दी के कुछ प्राचीन ग्रंथों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे पुष्य कवि ने ७१५ ई० में अलंकार की भाषा दोहरों में, अब्दुल्ला एराकी ने ८७० ई० के लगभग कुरान का तर्जुमा हिंन्दी में, मसऊद साद सलमा ने लगभग ९०० ई० के हिंदी का एक दीवान, और कालिंजर के राजा नन्द ने १०१३ ई० में सुल्तान महमूद की प्रशंसा में एक हिंन्दी शेर लिखा था।' ६

इनके अतिरिक्त अन्य कुछ लेखकों का उल्लेख अमीर खुसरो ने भी किया है। श्री बाबूराम सक्सेना अपने ग्रंथ 'दक्खिनी हिंन्दी' में इस संबंध में फर्माते हैं :

—"अमीर खुसरो···का जन्मस्थान जिला एटा और जन्म वर्ष १२५३ ई० बताया जाता है।...इन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती कवि मसऊद का उल्लेख किया है।··· ···मसऊद ने दो दीवान फारसी में और एक हिंदवी में लिखा था। मसऊद सुलतान इब्राहीम के जमाने में थे और दिल्ली की पराजय के समय जिन्दा थे, इसलिए उनका समय १२ वीं ई० सदी माना जाता है। खेद है कि इस कवि का कोई भी हिन्दी काव्य, गलत या सही, नहीं मिलता" सौभाग्य से डॉ० अब्दुलहक ने खुसरो के पूर्ववर्त्ती शेख फरीदुद्दीन शकरगंजी (११७३–१२६५ ई०) की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

"खाक लाने से गर खुदा पाएँ
गाय बैलाँ भी वासलाँ हो जाएँ।"
या—
"जली याद की करना हर घड़ी,
यकं तिल हुजूर सों टलना नईं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उठ बैठ में याद सों शाद रहना,
गवाहदार को छोड़ के चलना नईं ।" ७

'खुसरो के समकालीन ख्वाजा सैयद अशरफ जहाँगीर सुमानी ने १३०८ ई० में खड़ी बोली गद्य में पुस्तक लिखी थी। ८ जो वर्ण-रत्नाकर (कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर का मैथिली में लिखित गद्य ग्रंथ) को छोड़कर उत्तर भारत के भाषा--साहित्य का कदाचित् प्राचीनतम उपलभ्य गद्य-ग्रंथ है। ९

इस प्रकार गद्य और पद्य दोनों ही की दृष्टि से खड़ी बोली के साधारण साहित्य की रचना १४ वीं सदी के बहुत पहले ही उत्तर भारत के मुसलमानों के द्वारा आरंभ की जा चुकी थी।

१४ वीं सदी के आते-आते खड़ी बोली का साहित्य मुसलमानों की दक्षिण-विजय के साथ दक्षिण-भारत में भी पहुँच गया। "दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के सैनिकों ने १२९७ ई० में गजरात जीता, और उसी के सेनापति मलिक काफूर ने १३०४ ई० में महाराष्ट्र पर, १३०७ ई० में आन्ध्र पर और १३०८ में कर्नाटक पर विजय पाई।" १०

इन स्थानों में विजय के बाद जब धर्म-प्रचार का अभियान शुरू हुआ तो खड़ी बोली को माध्यम के रूप में स्वीकार करके ही। यह सही है कि "जिस भाषा को मुसलमान सूफियों ने धर्म के प्रचार का साधन बनाया और जिसे मुस्लिम साहित्यकारों ने अपनी सृजन की भाषा माना वह इस देश में पहले से मौजूद थीं, उसे मुसलमान कहीं बाहर से नहीं लाए।"११ किन्तु धीरे-धीरे वह मुसलमानों की भाषा के रूप में प्रसिद्ध हो गई और हिन्दुओं के शिष्ट साहित्य में उसका प्रयोग एक प्रकार से निषिद्ध हो गया।

भूषण की कविता में मुसलमान पात्रों के द्वारा इस भाषा का प्रयोग स्थिति को और अधिक स्पष्ट कर देता है। इसलिए आश्चर्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं यदि उत्तर भारत में मुसलमानों की भाषा के रूप में प्रसिद्ध होने के कारण ही खड़ी बोली को तुलसी, सूर, विद्यापति और कबीर नहीं मिल पाये हों। इसलिए भी 'जिस बोलचाल की भाषा में अमीर खुसरो और शेख फरीदुद्दीन शकरगंजी आदि आरंभ-काल के कलाकारों ने रचना कीं उसका 'साहित्य उत्तर भारत में लुप्त होकर दक्खिन में १५ वीं, १६ वीं और १७ वीं सदी में फूट निकला...—और उसी को दक्खिनी साहित्यकार दक्खिनी के नाम से पुकारने लगे। १२

सच तो यह है कि उत्तर भारत के शिष्ट साहित्य से भी खड़ीबोली पूर्णतः लुप्त नहीं हुई थी। हिन्दी के प्रत्येक कवि की कविता में इसके दो-चार भूले-भटके प्रयोग मिल ही जाते हैं। नागरीदास, रहीम और सीतल तथा ताज इस संबंध में और भी स्मरणीय हैं। 'ताज' ने खड़ी बोली में कवित्त और सवैये लिखे थे तथा रहीम ने संस्कृत वृत्तों में इस भाषा का बड़ा ही कलात्मक प्रयोग किया था। उनके मदनाष्टक में खड़ीबोली का मालिनी जैसे कठिन संस्कृत वृत्त में जैसा सुष्ठु निर्वाह किया गया है वह देखने योग्य है :

'कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था
चपल चखन वाला, चाँदनी में खड़ा था।
कटितट बिच मेला, पीतसेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला।'

रहीम और ताज को मुसल्मान होने के कारण खड़ी बोली से जैसा प्रेम था नागरी दासजी और सीतल जैसे हिन्दू कवियों को उससे कुछ कम नहीं।

'सीतल' ने तो उस ब्रजभाषा युग में भी खड़ीबोली को छोड़ ब्रजभाषा में रचना नहीं की और हरिऔध ने तो उन्हें हिन्दी में खड़ीबोली की नींव डालनेवाला प्रथम कवि माना है। सीतल ने पदावली साहित्य और लोकछन्दों के क्षेत्र में खड़ी बोली का प्रयोग किया और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागरी दासजी ने फारसी बह्रों में। इस प्रकार उत्तर भारत के शिष्ट साहित्य में भी खड़ी बोली की संभावनाएँ नितान्त अस्पष्ट नहीं थीं।

मुसलमानी जुबान की नफासत और सफाई से धुल-पुँछकर फारसी लिपि में खडीबोली का जो रूप 'दक्खिनी' के नाम से प्रकट हुआ, उसका आज की खड़ी बोली से जो यत्किंचित् अन्तर है वह उच्चारण और पदन्यास की शैली की भिन्नता के कारण। १३ भाव, विषय, अप्रस्तुत विधान आदि की दृष्टि से इसका साहित्य शतप्रतिशत भारतीय प्रतीत होता है। न फारसी-अरबी शब्दों का क्लिष्ट प्रयोग है न पुरुष-माशूकों के प्रति अभ्यर्थना; नर्गिश के बजाय कमल, बुलबुल के बजाय भौंरे और फरहाद-मजनू के बजाय कन्हैया के गीत इन मुसल्मान कवियों ने भुक्त हृदय से गाये हैं। यह प्रवृत्ति दक्षिण में वली और उत्तर में नजीर के काव्य तक छिट फुट रूप में अक्षुण्ण रही है:

"बिरागी जो कहाते हैं उसे घर बार करना क्या,
हुई जोगिनि जो कोई पी की उसे संसार करना, क्या,
जो पीवे प्रीत का पानी उसे क्या काम पानी सों,
जो भोजन दुख का करते हैं उसे आधार करना क्या।"—वली

× × ×

बिरह के बाग में दे आबदारी।
हमेशा रख झड़ी नैनां की जारी।
कि खुरशेद नबूअत की मदह में
कँवल का दिल खिला सीनः की दह में।"—वली

× × ×

"वाँ कृष्ण मदन मोहन ने जब सब ग्वालों से यह बात कही
औ आपी से झट गेंद उडा उस काली दह में फेंक दई
यह लीला है उस नंद-ललन मनमोहन जसुमति-दैया की
रख ध्यान सुनो दंडवत करो, जय बोलो कृष्ण कन्हैया की।"-नजीर

इसमें सन्देह नहीं कि पूरी पाँच शताब्दियों तक दक्खिनी या खड़ी बोली में जो साहित्य रचा जाता रहा उसकी भाषा ठेठ ढंग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की थी और साहित्य किंचित् समुच्च लोक-साहित्य के स्तर का, जब कि बोलचाल के रूप में यह भाषा संपूर्ण देश के शिष्ट समाज में शिष्ट भाषा के रूप में सम्मानित हो चुकी थी १४ सुल्तानों, १५ उमरावों, व्यापारियों, मुंशियों, पण्डों, १६ आन्दोलकों और विदेशी दुभाषियों ने उसे सम्मान के साथ स्वीकार कर लिया था। कई राज्यों में वह राजभाषा बन चुकी थी, १७ राजदरबारों में उसका सामान्य रूप से प्रयोग होता था और लाखों अग्रवालों, मुन्शियों तथा मौलवियों के देश-व्यापी प्रवासी परिवारों में उसे मातृभाषा का पद मिल चुका था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि खड़ीबोली अपने स्वभाविक विकास में अब तक राष्ट्र के मुखस्थ हो चुकी थी और अब उसे हृदयस्थ होने के लिए संपूर्ण देश के साहित्यकारों की प्रतिभा के संगठित योगदान की अपेक्षा थी।

दूसरी ओर, दुर्भाग्य से, देहली के गोरे साम्राज्यवादियों ने पंचदशवर्षीय राष्ट्रभाषा-निर्माण की षड्यन्त्र-परंपरा इसके साथ ही साथ शुरू कर रक्खी थी। फिर क्या था कुछ अवतारी मौलवियों, मुन्शियों और पंडितों के सिर पर एकबारगी एक ही मन्थरा-सरस्वती सवार होकर बारी-बारी से संस्कृत और फारसी में फतवे झाड़ने लगी।

साधारण जनता के लिए उनकी यह गिरपिट अर्थ की दृष्टि से उनके नए गोरे शासकों की अनबूझ देववाणी के ही समीप पड़ती थी। अतः उनके लिए मंत्र-तंत्र, जादू-टोटकों तक उनका प्रयोग सीमित था। हाँ, नई पीढ़ी में पुश्तैनी मुंशियों और मुलाज़िमों की तैयारी के लिए गोरी राजभाषा के साथ-साथ इन काली सामन्त भाषाओं को भी स्कूल कालेज के द्वारा देश पर लादने की अहिंसात्मक योजना चल पड़ी।

खड़ीबोली की स्थिति इस समय बड़े धर्म संकट की हो गई। १७ वीं सदी तक जितने ग्रंथ दक्खिनी हिन्दी के मिलते हैं वे सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुसलमानों की कृतियाँ हैं। इसलिए दक्खिन के साधारण जन-समाज में तो वह मुस्लिम-भाषा के रूप में प्रसिद्ध थी ही, औरंगजेब की दक्षिण-विजय के पश्चात् उत्तर-भारत के मुसलमान कवियों ने जब उसे अपने साहित्य की भाषा के रूप में, एक लम्बे अर्से के बाद फिर से स्वीकार कर लिया तो उत्तर भारत में भी उसकी हैसियत मुसल्मानी भाषा की हो गई। दूसरी ओर मुसलमान अपनी भाषा के रूप में फारसी और अरबी को सम्मान देते थे। 'सन् १७०० ई० में वली' दिल्ली आये हुए थे। वहाँ उनकी भेंट सूफी कवि 'शाह-सादुल्ला गुलशन' से हुई जिसके अनुरोध करने पर कि 'ये इतने फारसी के मजबून जो बेकार पड़े हैं, उन्हें काम में ला', 'वली' ने अपना रुख ही पलट दिया और अरबी-फारसी मिश्रित कविता करने लगे।' १८ स्पष्टतः यह विचित्र स्थिति थी। जिस प्रकार दिवंगत मौलाना आज़ाद को काँग्रेस के हिन्दूगण मुसलमान मानते थे और लीग के मुसलमान हिन्दू, उसी प्रकार अंग्रेजों के मन्त्र-बल के प्रभाव से खड़ीबोली को हिन्दू-पंडित 'यावनी' मानने लगे और मुसलमान मौलवी काफिरी। फिर भी व्यवहार के क्षेत्र में खड़ीबोली इतनी लोकप्रिय हो चुकी थी कि उसका पूर्ण रूप से बहिष्कार करना दोनों में से किसी के लिए संभव नहीं हुआ। इसलिए इन फ़तवों से उसका बहुत नुक-सान नहीं हुआ। वह संपूर्ण राष्ट्र में पूरी तरह से फैल चुकी थी और अब फूल देने लग गई।

संस्कृत, अरबी, फारसी और अंग्रेजी के द्वारा हिन्दी को शिकस्त देना आसान नहीं है, यह अब स्पष्ट हो चुका था। बाहर के हमलावरों से न हिंद को भय है और न हिंदी को। हम गोरियों से नहीं अपने जयचंदों से हारते रहे हैं। दूरंदेश अंग्रेजों को अब तक यह हिकमत स्पष्टतः मालूम हो चुकी थी। भीतरी विश्वास की योजना बन गई; अब अरबी, फारसी और संस्कृत को खड़ी बोली के भीतर घुसकर उसे पामाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना था। दिल्ली आकर यह मंत्र वली साहब पहले ही सीख गये थे, कलकत्ते जाकर लल्लूलाल भी जी दीक्षित हो आये।

इस प्रकार जैसे कांग्रेस और लीग को आगे कर गौरांग महाप्रभुओं ने एक ही देश को दो टुकड़ों में बाँट दिया उसी प्रकार लल्लूलाल और वली साहब के अनुयायियों के सहयोग से एक ही भाषा हिन्दी और उर्दू नाम की दो भाषाओं में बाँट दी गई। १९ राष्ट्रभूमि, राष्ट्रपिता और राष्ट्रभाषा के इस हृदय-वेध को जब तक एक संश्लेष में रखकर देखा नहीं जायगा तब तक स्वर्गीय बाबू अयोध्या प्रसाद खत्रीजी का मूल्यांकन उचित रूप से संभव नहीं होगा।

हिंदी—वह हिन्दी जो बंगला की सगी बहन और ढाई करोड़ जन-संख्या की मातृभाषा मैथिली को अपने में समेट लेने को कृत-संकल्प है और जो गुजराती की सद्यःसोदरा राजस्थानी की विरासत को बिना डकार लिए पचा चुकी है, अपनी आधी हस्ती को उर्दू कहकर इनकार कर जाती है, और चतुर्दश-भाषा-भाषी व्याज बधिर-विधायकों का संविधान उसपर अपनी मुहर डाल देता है! नेताओं और भाषा-वैज्ञानिकों के इस कान्त-कान्ताभाव का रहस्यवाद शायद ही किसी सरल मस्तिष्क वाले की समझ में आ सकेगा!

हम देख चुके हैं कि साधारण जनता की मुखस्थ भाषा के रूप में जो खड़ी बोली उत्तर से दक्षिण तक एक रूप में प्रचलित थी वही सामन्तों और पंडितों की शिष्टमंडली में आकर राजनीतिक अखाड़ियों के षड्यंत्र से दो भाषाओं के नाम से विभक्त कर दी गई। राष्ट्रभाषा के इस विभाजन में राष्ट्र-विभाजन का जो पूर्वाभास था उसे राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की तरह बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री भी भाँप रहे थे। इस लिए उन्होंने इस भेद-नीति का जोरदार शब्दों में विरोध किया। 'खड़ी बोली का पद्य' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट घोषणा की:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'उर्दू को मैं हिन्दी का एक स्टाइल समझता हूँ। उर्दू पद्य को खड़ी बोली का पद्य मानता हूँ। यह कौन कहता है कि उर्दू दूसरी वस्तु है? सच पूछो तो उर्दू भी इसी हिन्दी का एक रूपान्तर है।' २०

बाबू साहब की इस घोषणा को देश के अनेक विद्वानों २१ और भाषा-वैज्ञानिकों ने ही नहीं दुहराया, २२ अपितु तासी जैसे विद्वानों ने भी उसका समर्थन किया और अपने इतिहास में हिन्दी और उर्दू को एक ही भाषा की दो शैलियों के रूप में स्वीकृत और संकलित किया। खत्रीजी की इस घोषणा की क्रान्तदर्शिता इसी से स्पष्ट है कि आगे चलकर यही हिन्दोस्तानी का नारा महात्मा गाँधी ने भी किंचित् दूसरे रूप में उपस्थित किया था। गाँधीजी और खत्री जी के भाषा-सिद्धान्त में एक स्पष्ट अन्तर यह था कि गाँधी जी दो लिपि (देवनागरी और फारसी) का सिद्धान्त स्वीकार करते थे जो खत्रीजी को मान्य नहीं था। वे देवनागरी लिपि में लिखित खड़ी बोली के पक्ष में थे, भले ही उसकी शब्द-शैली किसी भी प्रकार की हो—

अरबी फारसी शब्दों से भरी मौलवी शैली, या संस्कृत शब्दों से निर्मित पंडिताऊ शैली, या देशज शब्दों से भरी ठेठ शैली, या अंग्रेजी शब्दों से संकुल युरेशियन शैली, अथवा मुंशियों की मिश्रित शैली। खत्रीजी का भाषा-सिद्धान्त गाँधीजी के भाषा सिद्धान्त से अधिक व्यावहारिक था यह बिल्कुल स्पष्ट है। उनकी भाषा संबंधी दृष्टि की प्रशंसा करते हुए 'खड़ी बोली का पद्य' के प्रथम भाग की भूमिका में फ्रेडरिक पिन्कॉट साहब ने लिखा था :

"In fact he proposes a compromise; one party is asked to abandon a cherished dialect of their language, and the other party to give up a customary method of writing it. By conforming to the compiler's suggestion, all parties meet on the common ground

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

of the Khari-Boli, or 'correct speech, understood by all, and living, growing, and changing, with the daily requirements of advancing civilization. It is certainly a grand conception, worthy of the fullest realization......"

दुख: है कि खत्रीजी की इस बुद्धिमत्ता-पूर्ण राष्ट्रिय भाषा--नीति को उनके समवर्त्ती और परवर्त्ती विचारक ठीक-ठीक नहीं समझ सके, जिसका परिणाम राष्ट्र और जाति के लिए नितान्त लज्जा-जनक और घातक सिद्ध हुआ। खत्रीजी के विरोधियों के कारण साम्राज्य वादियों की भाषा-भेद-नीति अन्ततः सफल हुई और उनकी राष्ट्र-भेद-नीति का अगला कदम अब काफी आसान हो गया।

खड़ीबोली का हिन्दी और उर्दू के नाम से विभाजन कर चुकने के बाद भी गोरा-साम्राज्यवाद निश्चिन्त नहीं हुआ। अभी जिस प्रकार रूस और अमरीकाके लाल-नीले साम्राज्यवादों को भारत के प्रजतन्त्र से ही ज्यादा खतरा जान पड़ता है, पाकिस्तान की मुलाजिमशाही से नहीं, उसी प्रकार राष्ट्र के शत्रुओं को उर्दू के बजाय अभी भी हिन्दी से खतरा था। किन्तु लल्लू लाल जी के प्रेम सागर में इस खतरे को दूर करने का नुस्खा भी मौजूद था। प्रेम सागर के गद्य को खड़ी बोली में और पद्योंको ब्रजभाषा में रचकर उन्होंने यह प्रवाद जारी करना चाहा था कि खड़ी बोली में पद्यों की रचना होही नहीं सकती। उनके समकालीन सदलमिश्र और इंशा अल्ला खाँ ने अपनी रचनाएं खड़ी बोली गद्य-पद्य में की थीं, फिर भी लल्लूजी के आविष्कार को जाने-अनजाने तूल दिया जाने लगा। हिन्दी और उर्दू को 'दो न्यारी-न्यारी' भाषाओं के रूप में स्वीकार करने वाले राजा लक्ष्मण सिंह ने भी गद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली और पद्य की भाषा के रूप में ब्रजभाषा को प्रतिष्ठित किया और हिन्दी के युग नायक भारतेंदु ने भी अपना अभिमत ब्रजभाषा पद्य के पक्ष में प्रकट किया। २३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"जो हो मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी इससे यह निश्चय होता है कि व्रजभाषा में ही कविता करना उत्तम होता है।"

आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि इस प्रवाद-युग में भी खड़ी बोली पद्य की अनेक उत्तमोत्तम रचनाएँ लिखी जा रही थीं २४ और दूसरी ओर उनके रचयिताओं में से ही अनेक व्यक्ति खड़ी बोली में पद्यरचना असंभव बता रहे थे!

भारत की राष्ट्रभाषा को पुनर्विभक्त और नष्ट करने वाले इस षड-यंत्र के पीछे साम्राज्यवादियों का खुला हाथ था जिसका पता, खड़ी बोली को अपने मुलाजिमों की सृष्टि माननेवाले ग्रियर्सन साहब के इस फतवे सेभी लगता है:

"I am strongly of opinion that all attempts at writing poetry in Khari-Boli must be unsuccessful. The matter was fully discussed some year ago by Babu Harishchandra of Banaras and I consider his arguments convincing."

दुःख है कि राष्ट्रभाषा के कुछ विशुद्ध प्रेमियों और साहित्य-निर्माताओं को भी इस चकमें का पता नहीं था। अब हिन्दी के लिए ऐसा घोर दुर्दिन आ गया था जब कि शिक्षा के क्षेत्र से भी उसका सदा के लिए निष्कासन हो जाता और राष्ट्रभाषा के रूप में उसके प्रतिष्ठित होने का कोई सपना भी नहीं देख सकता। 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक अपने ग्रंथ में हरिऔध जी ने हिन्दी की इस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया है:

"पाठशालाओं में विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा सीखने के लिए दो-दो भाषाएँ पढ़नी पड़ती थीं। इसमें उनको दूना परिश्रम करना पड़ता था। इसलिए सुविधा की दृष्टि से वे उर्दू पढ़ना अधिक पसन्द करते थे, क्योंकि उसके गद्य और पद्य की भाषा एक थी।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री इस गाढ़े समय में आन्दोलक के बाने में उतरे और अन्ततः वे राष्ट्रभाषा के पक्ष में सरदार पटेल सिद्ध हुए। उसके हिन्दी-उर्दू रूप में विभाजन को तो वे नहीं रोक सके किन्तु पुनर्विभाजन के षड्यन्त्र को विफल कर उन्होंने हिन्दी को डूबने से बचा लिया।

इसी युग के आस-पास भगवान् बाल गंगाधर तिलक ने राजनीति के क्षेत्र में अपना युगान्तरकारी नारा बुलन्द किया था: 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।' हिन्दुओं और मुसलमानों तथा गद्य और पद्य की 'एक राष्ट्रिय भाषा' का वैसा ही राष्ट्रिय नारा खत्रीजी ने भी दिया। अपने इस सपने को पूरा करने के लिए वे अपनी जिन्दगी भर की कमाई पर तुलसीदल रखकर बाहर निकल पड़े। हाथ में खड़ी बोली के जयनाद का झंडा, देह पर खड़ी बोली की रामनामी, बगल में खड़ी बोली की संकलन-पोथी और प्राणों में खड़ी बोली के भविष्य का सपना लिए वे ढलती उम्र में जिस पुनीत यात्रा में निकले उसका महत्व, राष्ट्रभाषा के लिए, दण्डी-यात्रा से किसी भी प्रकार कम नहीं है। किन्तु हिन्दी-साहित्य के आलोचक, कवि, निबंधकार और इतिहासकार पं० रामचन्द्र शुक्लजी ने हमारे इस कर्मठ मनीषी का जो व्यंग-चित्र अपने इतिहास में उपस्थित किया है वह भी देखने ही योग्य है:

"खड़ी बोली पद्य का झंडा लेकर स्वर्गीय बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री चारों ओर घूम-घूम कहा करते थे कि अभी हिन्दी में कविता हुई कहाँ, सूर, तुलसी, बिहारी आदि ने जिसमें कविता की है वह तो 'भाखा' है 'हिन्दी' नहीं। संभव है इस सड़े-गले ख्याल को लिए अब भी कुछ लोग पड़े हों।"

× × ×

"मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री खड़ी बोली का झंडा लेकर उठे।...ये भाषा तत्त्व के जानकार न थे। उनकी समझ में खड़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोली ही हिन्दी थी।......उनकी पोथी में और पद्यों के साथ पाठक जी का "एकान्तवासी योगी' भी दर्ज हुआ। और कई लोगों से अनुरोध करके उन्होंने खड़ी बोली की कविताएँ लिखाईं। ......इसी प्रकार खड़ी बोली के पक्ष में जो राय मिलती, वह भी उसी पोथी में दर्ज होती जाती थी। धीरे-धीरे एक बड़ा पोथा हो गया जिसे बगल में दबाए वे जहाँ कहीं हिन्दी के संवंध में सभा होती, जा पहुँचते। यदि बोलने का अवसर न मिलता तो वे बिगड़कर चल देते थे।" सूर और तुलसी ही नहीं, विद्यापति और चंद को भी हिन्दी 'भाषा' के कवि के रूप में समेटने और उर्दू को स्वतंत्र और पृथक् भाषा के रूप में छाँटने वाले विद्वानों के तरो-ताजे ख्याल का भाषा-विज्ञान से क्या संबंध है, यह तो भाषा-विज्ञान वाले ही जानें। नम्रता पूर्वक केवल इतना निवेदन किया जा सकता है कि अनेक अद्यतन विद्वानों की भाँति श्री शिवदान सिंह चौहान ने भी 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष' में खत्रीजी के उस 'सड़े-गले ख्याल को ही दुहराया है, जिसके कारण शुक्ल जी जैसे सहृदय व्यक्ति के हृदय से भी उनका लाड़ला लक्षमण सहसा प्रकट हो गया।

सच पूछिए तो खत्रीजी का भाषा-तत्त्व ज्ञान बड़ा प्रौढ़ था और उनका दृष्टि बड़ी उदार और दूरंदेश थी। वे मातृभाषाओं की स्थिति को मिटा राष्ट्र भाषा की स्थापना नहीं करना चाहते थे। राष्ट्रभाषा के तत्कथित समर्थक यदि खत्रीजी के उस मन्तव्य को आज भी समझ सकते तो राष्ट्र और राष्ट्र भाषा का बड़ा उपकार होता। खत्रीजी यह स्पष्ट कर देना चाहते थे कि जिस प्रकार उर्दू, बंगला और गुजराती वालों को देवनागरी लिपि के पक्ष में अपनी लिपि छोड़ते मोह होता है, वैसे ही मोह का त्याग कर मिथिलाक्षर वालों ने राष्ट्र के हित में देवनागरी लिपि को स्वीकार कर लिया है और रवीन्द्र और एकबाल जैसे अपने महाकवियों—तुलसी, सूर, विद्यापति, कबीर, चंद आदि से पूर्ववत् प्रेम रखते हुए भी अवधी, व्रजभाषा, मैथिली, भोजपुरी और राजस्थानी के मातृभाषियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने राजभाषा की महत्ता स्वेच्छा से आगे बढ़कर स्वीकार कर ली है' इसलिए अब उन्हें अधिकार है कि वे अपने भाइयों से भी उस आदर्श के अनुकरण की प्रार्थना करें। वे हिन्दी को चादर बना कर ब्रज-भाषा, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी की स्वतंत्र स्थिति को ढँकना नहीं चाहते थे बल्कि अन्य भाषा-भाषियों के सामने उनके निःस्वत्याग और राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्र साहित्य के हित में परिणत स्वेच्छा-सायुज्य को विज्ञापित रूप से प्रकट कर देना चाहते थे। इन भाषाओं से खत्रीजी को कितना प्रेम था, यह उनके 'तिरहुता' पत्र के प्रकाशन की योजना में स्पष्ट है। दुःख है कि पत्र का डिक्लेरेशन लेने के कुछ ही दिन बाद खत्रीजी की प्लेग से मृत्यु हो गई और उनकी वह योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

हम देख चुके हैं कि खड़ी बोली में पद्य के विशाल प्राचीन साहित्य के रहते हुए, भारतेन्दु युग के विद्वान खड़ी बोली को पद्य-रचना के माध्यम के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहते थे। खत्रीजी ने हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली के पद्य को प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया और खड़ी बोली के पद्य की प्रतिष्ठा का अर्थ था खड़ीबोली के साहित्य की प्रतिष्ठा, क्योंकि हिन्दी-साहित्य का इतिहास तब तक, वस्तुतः पद्यों का इतिहास था।

खत्रीजी की प्रसिद्ध हस्ताक्षर यात्रा इस संबंध में स्मरणीय है। ढलती उम्र में उन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर हिन्दी के लेखकों कवियों और नौनिहालों से भेंट की, उन्हें यथायोग्य ढंग से हिन्दी में पद्य-रचना करने के लिए उत्साहित किया, वैसी प्रत्येक रचना के लिए रचयिताओं को, अपनी गरीबी के झोले में से जबरन पुरस्कार दिये, उन्हें संकलित, संपादित और प्रकाशित किया और फिर उन्हें बिना मूल्य वितीर्ण कर आये। "खड़ी बोली का पद्य" का दो भागों में, अपने रुपयों से प्रकाशन और उनका बिना मूल्य वितरण खत्री जी के निःस्वार्थ त्याग का ज्वलन्त साक्ष्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार खाकर प्यार लुटाने वाले इस फकीर फरहाद को हर गली में एक पहाड़ और दो गालियाँ मिलीं, उन गालियों को उसने बड़े प्यार से सहेज कर रक्खा, "खड़ी बोली का आन्दोलन" नामक ग्रंथ में उन्हें संकलित कर प्रकाशित कराया और अपनी विनीत प्रार्थना में पिरो कर उन्हें घर-घर बाँट आया! खत्री जी की तरह अपने सभी ग्रंथों को बिना मूल्य वितरण करने वाला कोई दूसरा व्यक्ति संसार के किसी दूसरे साहित्य में मिलता है या नहीं, कहना कठिन है।

लोग कहते थे कि उनकी पोथियाँ मुफ्त में भी महँगी थीं। इस निर्दय दिल्लगी में बेशर्मी के सिवा कुछ नहीं है।

खत्रीजी की पोथियाँ खड़ी बोली की पहली स्वर्ण-मंजूषा हैं, जिनमें खड़ी बोली काव्य की अद्यतन संभावनाएँ मयूरांड रसवत् निगूढ हैं।

छायावाद के युग में मुक्त छंद की प्रवर्त्तकता के लिए जो होड़ा-होड़ी मची उसके बहुत पूर्व 'खड़ी बोली का पद्य' में खत्रीजी ने अपने मित्र महेशनारायण (पटना) की निम्न लिखित स्वपुरस्कृत पंक्तियाँ संकलित कीं :

"पर उसकी बहार
हीरे की हो धारा,
मोती का हो 'गर खेत,
कुन्दन की हो वर्षा,
और विद्युत् की छटा तिर्छी पड़े,
उनपै 'गर आकर,
तो भी वह अति विचित्र,
चित्र सा माकूल न हो।"

आश्चर्य है कि कई दशक बाद प्रज्ञा-चक्षु पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जिस 'जूही की कली' को दुत्कार दिया था उसे खत्री जी बहुत पहले प्यार से संवार कर भारत-भारती के जूड़े में जड़ चुके थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज प्रयोग वाद की जिस लोकगीत-धारा की इतनी प्रशंसा है, उसका पूर्वाभास भी खत्रीजी के संकलन में बहुत पहले से पाया जाता है :

"ठंढा पानी लगा सुहाने, आलस तन आई,
फूले सिरिस फूल की खुशबू कोसों तक छाई।
बागों में कचनार बनों में टेसू हैं फूले
मदमाते भौंरे फूलों पर फिरते हैं भूले
एक रंग पीली सरसों खेतों में लहराती
बीच-बीच में कली कुसुम की फूली छव पाती
कहिं तीसी, कहिं रहर, कहिं जौ फूले मन भाये
गेंदे बाँध कतार बाग में नया रंग लाये।" २५

खत्रीजी के विनीत आग्रह और ससर्वस्व समर्थन ने खड़ी बोली के अनेक कवि प्रस्तुत किये जिनमें मुजफ्फरपुर के बाबू लक्ष्मी प्रसाद, दरभंगे के पं० भुवनेश्वर मिश्र और पटने के बाबू महेशनारायण को खड़ोबोली के बिहारी कवियों की पहली पीढ़ी के रूप में स्मरण किया जा सकता है। बाबू लक्ष्मी प्रसाद जी ने सन् १८७६ ई० में गोल्ड स्मिथ कृत 'हर्मिट' का 'योगी, के नाम से अनुवाद किया और 'भारत दुर्दशा' पर कुछ कविताएँ लिखीं। हिन्दी साहित्य के इतिहास-प्रसिद्ध कवियों में पं० श्रीधर पाठक खत्री जी के साहित्यिक परिजन थे। उनकी मुख्य कविताओं को भी खत्री जी ने अपने संग्रह में संकलित कर प्रकाशित किया था।

खत्री जी के इस निःस्वत्याग और राष्ट्र भाषा प्रेम की फ्रेड्रिक पिन्कॉट जैसे वदान्य विदेशी विद्वानों ने एक ओर प्रशंसा की तो हिन्दी साहित्य के प्रेमियों ने घोर निंदा। २६

खड़ी बोली के इस प्रेमी को कुछ विद्वानों ने ब्रजभाषा का शत्रु मान लिया और तुक मिलाकर वेतुक की गालियां सुनाने लगे। २७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० प्रतापनारायण मिश्र जी से भी चुप नहीं रहा गया। उन्होंने ब्रजभाषा की प्रशंसा करते हुए अपने पत्र 'ब्राह्मण' में लिखाः

'जो लालित्य, जो माधुर्य, जो लावण्य कवियों की उस स्वतंत्र भाषा में है जो ब्रजभाषा, बुंदेल खंडी, वैसवारी और अपने ढंग पर लाई गई संस्कृत फारसी से बन गई है, जिसे चन्द्र से लेकर हरिश्चन्द्र तक प्रायः सब कवियों ने आदर दिया है, उसका सा अमृतमय चित्तचालक रस खड़ी और बैठी बोलियों में ला सके, यह किसी कवि के बाप का मजाल नहीं।" इसी लहजे में उन्होंने भारतेन्दु की भी दुहाई दी :

"आधुनिक कवियों के शिरोमणि भारतेंदुजी ही से जब यह कार्य न हो सका तो यत्न निष्फल है।" २८

ग्रियर्सन साहब ने भी 'खड़ी बोली का पद्य' देखकर पंडित-प्रतापनारायण मिश्र जी की तरह भारतेन्दु की दुहाई देते हुए खड़ी-बोली के पद्य के भविष्य के संबंध में अपनी घोर अनास्था प्रकट की है।

भारतेन्दु की लगातार दुहाई सुनकर खत्री जी ने 'एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना' नाम से अपना विस्तृत अभिमत प्रकाशित कराया। उन्हों ने स्पष्ट और निर्भीक शब्दों में घोषणा की कि 'भारतेंदु ईश्वर नहीं थे', उनसे जो न हो सका वह दूसरे कर सकते हैं। खत्री जी के इस निर्भीक कथन ने कुछ विद्वानों को नीचे स्तर की गालियों का प्रयोग करने के लिए बाध्य कर दिया। पं० राधाचरण गोस्वामी जी खत्री जी के साथ-साथ खत्री जी की खड़ी बोली को भी खड़ी बोली में ही खरी-खोटी सुनाने लगे। आपने लिखा 'कि यह खड़ी बोली की कविता भी पिशाची नहीं तो डाकिनी अवश्य कवि-समाज में मानी जायगी।'

खत्रीजी पर व्यक्तिगत आक्षेप करते हुए आपने यह भी फर्माया कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'खड़ी बोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों को विशेष होती है जो व्रजभाषा में न कविता कर सकते न काव्य के तत्त्व को जानते हैं।'

पं० प्रतापनारायण मिश्र जी ने भी यह बात दुहराई:

'जो कविता करना नहीं जानते वे अपनी बोली चाहे खड़ी रक्खें चाहे कुदावें।'

बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री जी स्वयं कविता नहीं कर सकते थे, ऐसी बात नहीं थी। 'विश्लेषण' के कर्मवीर संपादक पंडित विद्यानाथ मिश्र जी ने (जो संकल्प की धुन में खत्री जी मे रत्ती भर कम नहीं हैं,) खत्री जी की कविताओं की एक दुर्दशाग्रस्त पोथी प्राप्त की है। व्यंग्य-विनोद के अतिरिक्त उसमें कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं जो गरिमा और सरसता की दृष्टि से 'खड़ीबोली का पद्य' में संकलित कविताओं के पच्चास प्रतिशत पद्यों से अधिक उत्कृष्ट हैं। उन्हें अपने ग्रन्थ में संकलित और प्रकाशित नहीं करके खत्रीजी ने अपने दिवालिएपन का पता नहीं दिया, अपनी शालीनता प्रकट की। उनके लिए हिन्दी-प्रेम आत्म-विज्ञापन का व्यवसाय नहीं था, आत्मत्याग की वलिवेदी था। इसीलिए उनके 'सबहि मानप्रद आप अमानू'—व्रत को समझने में अनेक महापुरुषों ने ओछी भूल की और उनके चरण प्रहारों को खत्रीजी ने अपने विष्णु-वक्षस्थल पर श्रीवत्सत्व का गौरव सादर प्रदान किया।

कहते हैं कि खत्रीजी का हिन्दी-प्रेम अनेक विद्वानों की दृष्टि में खब्ती की सीमा को छू चुका था। तभी कुछ ने उन्हें डाँटा, कुछ ने गालियाँ दीं और कुछ ने अपना मिर्जापुरी डंडा दिखलाया।

खत्रीजी इन सारे मानापमानों की वर्षा को पर्वत की भाँति कूटस्थ होकर झेलते खड़े रहे। उनकी ओर से कभी हिंदोस्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के सहृदय संपादक, २९ कभी पं० श्रीधर पाठक और बाबू गोपालराम गहमरी जी ३० आलोचकों को उत्तर दे देते पर खत्रीजी अपने जीवन के आखिरी दिनों में एक प्रकार से वचन-संन्यास ले चुके थे। वे सच्चे कर्मयोगी की तरह हानि-लाभ की पर्वाह किये विना अपने संकल्प में लगे रहे। अपनी कमाई की कौड़ी-कौड़ी, जमीन का चप्पा-चप्पा, पसीने की बूँद-बूँद और बुढ़ौती का एक-एक क्षण वे राष्ट्रभारती को समर्पित कर चुके थे। कुछ दिनों के बाद विरोध करनेवालों की आवाज बदलने लगी।

कुछ ने भारतेंदु का दोहा दुहरा कर अपनी तटस्थता जाहिर की, ३१ और कुछने सहृदयता पूर्वक खत्री जी की बात मान ली। ३२ पर गालियों की जगह जब तालियाँ पिटने लगीं तो खत्री जी धराधाम से विदा हो चुके थे—

' देना हो जितना तू दे दे,
लेना, कोई यह न करो '

उन्हें अपनी राष्ट्रसेवा की क्षतिपूर्त्ति गरीबों की छातीपर मसनदी तोंद से मूंग दलकर उगाहनी नहीं थी। त्यागी त्याग कर जा चुका था और उसके त्याग, तपस्या, पसीने और खून से सिंचे हुए बिरबों के फूलों के सेहर अपने-अपने सिरपर डालने के लिए मुस्तैद और चुस्त साहित्य-सेवियों में आपा-आपी शुरू हो गई थी। हाँ, खत्री जी की मृत्यु के बाद, उनकी संकल्प की पूर्त्ति के बाद, परिमल, और पल्लव के प्रकाशन के बाद भी गोरा सम्राज्यवाद हार मानने वाला नहीं था, वह गला फाड़ कर चिल्लाये जा रहा था कि जो भूत में हुआ, वर्त्तमान में हो रहा है और भविष्य में होगा वह सब कुछ हमारे हित में असंभव है। ३३

हमारी पीढ़ी, अपने अतीत की विभूतियों को जब आज नए सिरेसे आँकने बैठी है, तो खत्री जी को भूल जाना क्या उसकी कृतज्ञता का पंचशील है? खत्री जी बिहार के हिन्दी प्रेम के प्रथम आकाश दीप हैं और हिन्दी-साहित्य की नई काव्य-समृद्धि उन्हीं के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बौरेपन से बौराने योग्य हो सकी है। यह ठीक है कि खत्री जी हिन्दी साहित्य के सम्राट् नहीं हैं, विद्यापति, कबीर, तुलसी, सूर, भारतेन्दु, प्रेमचंद, प्रसाद और निराला के आसन पर उन्हें हम बैठा नहीं सकते। पर हम हृदय पर हाथ रखकर सोचें कि अयोध्याप्रसाद खत्री की कतार में खड़े होने की योग्यता संपूर्ण हिन्दी-साहित्य के इतिहास में निष्ठा की दृष्टि से, कबीर और निराला को छोड़ कर और किसमें है?

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री में तपस्वी की सहन शीलता, सेनापति का संकल्प और सन्यासी की उदारता थी तो ऋषि की क्रान्तदर्शिता भी। उन्होंने भविष्य को मंत्रों की भाँति देखा था। तभी जिसका मन पुरुष के चरणोदक को उन्होंने अपने संकलन-ग्रंथ रूपी कमंडलु में यत्न से रक्खा। उसके तीन डगों से आधुनिक भारत के भाव का त्रिलोक नपने-नपने पर है और अब वह चरणोदक कमण्डलु की गोमुखी से उफन कर आसेतु हिमाचल को सिक्त करता हुआ विश्व-काव्य के क्षीर--सागर को गंगा-सागर बनाने जा रहा है।

जीवित रहने पर जिसे हम श्रद्धा के दो शब्द नहीं दे सके, मरने पर उसे सिंहासन देकर हम उसका क्या बनादेंगे? पर खत्रीजी के संबंध में हमें एक वार फिर विचार करना होगा, उनके लिए नहीं, अपनी कृतघ्नता की कालिख पोंछने के लिए। खड़ीबोली के गद्य-भगीरथ भारतेंदु और वैयाकरण शिरोमणि महावीरप्रसाद द्विवेदी के युगों के बीच की दशाब्दियों का जो युगपुरुष का आसन रिक्त है वह किसकी अपस्थता के कारण? हिन्दी साहित्य का गांधी-व्रत लेकर हमारा कौन युग-पुरुष सिंहासन की छूत से अपने पैरों को अपवित्र किये विना शहीद हो गया? इस प्रश्न पर हम विचार करें। हिन्द-प्रेमियों के अतिरिक्त खत्री जी का कोई दूसरा वारिश नहीं है।

खत्रीजी हिन्दी साहित्य के सम्राटों के आसन पर प्रतिष्ठित होने की महत्त्वाकांक्षा लेकर कर्मक्षेत्र में नहीं उतरे थे। वे प्रेमी थे, व्यापारी नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे। सिपाही होकर उन्होंने जिस आसन और छत्र को बचा लिया उसे ओढ़-पहन कर हमारे साहित्य-सम्राटों की मंडली इसी प्रकार आनन्द मनाती रहे।

सिपाही दिल में सम्राटों से छोटा नहीं होता, बहुधा बड़ा होता है। बड़ाई और छुटाई में सामाजिक संकीर्णता का दृष्टि-भेद है हम सम्राटों का दिमाग से अदब करते हैं तो सिपाहियों का दिल के प्यार पर पूरा हक है। हमारे दिल के दरवाजे पर एक सदी बाद जो यह दस्तक सुनाई दे रही है उसका यही तकाजा है:

"ऐ दिलदार द्वार खुलने दे मैं हूँ एक सिपाही" यह छोटा सा तकाज! एक बहुत बड़े हकदार का है।

प्रसंग-संकेत

१ "Such a language did not exist in India before... when, therefore Lalluji Lal wrote his Premsagar in Hindi, he was inventing an altogether new Language."—ग्रियर्सन: लाल चन्द्रिका की भूमिका

२ "सन् ७७८ ई० में दाक्षिण्याचार्य चिन्होद्योतन ने 'कुवलय माला कथा' लिखी। उसमें एक हाट का उल्लेख है जिसमें आये-हुए देश-देश के बनिए अपनी-अपनी बोली में अपना-अपना माल बेचने का यत्न करते हैं।......मध्यदेश (हिन्दी भाषी प्रदेश) से आए हुए बनिये के मुँह से.........हिन्दी के दो सर्वनाम 'तेरे' 'मेरे' और एक क्रियापद 'आउ' का साफ सुनाई देना इस बात का पता देता है कि उस समय मध्य देश में हिन्दी बोली जाती थी।"

—डॉ० पीताम्बर दत्त : मकरन्द : प्रथम संस्करण पृ० १

३ "यह कहना कि खड़ी बोली में गद्य लिखने का आरंभ लल्लूलाल जी आदि ने अंग्रेजों की प्रेरणा से किया था, एकदम निराधार और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गलत है। बहुत पहले से खड़ी बोली में आज की हिन्दी के समान गद्य लिखा जाता था।" ह० प्र० द्वि० : विशाल भारत: अंक २५ अंक ४, अप्रैल १९४० : पृ० ३६८

४ "हिंदवी ज़बान पंजाब के पूरबी हिस्से और दिल्ली मेरठ के आसपास की भाषा थी।" --बाबूराम सक्सेना : दक्खिनी हिन्दी : पृ० २३

"अपभ्रंश उत्तर भारत में सिन्ध से लेकर बंगाल तक और दक्खिन में गुजरात और महाराष्ट्र तक फैले हुए थे। इनका जो रूप सर्वमान्य हुआ वह उसी प्रदेश का था जो आज मोटे तौर से खड़ी बोली का क्षेत्र है।" दक्खिनी हिन्दी : पृ० २५

५ दक्खिनी हिंदी ० पृ० २६: बाबूराम सक्सेना

६ डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल : मकरन्द : पृ० ३ : प्र० सं०

७ दक्खिनी हिन्दी : पृ० ३१

८ ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली : पृ० ५०

९ श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ज्योतिरीश्वर का समय १४वीं-पन्द्रहवीं सदी मानते हैं किन्तु वर्ण रत्नाकर की ही भूमिका (पृ० ५-६) में पं० बबुआजी मिश्र ने प्रबल साक्षों के आधार पर उन्हें १३ वीं सदी का राज-सामन्त सिद्ध किया है।

१० दक्खिनी हिन्दी : पृ० १५—१६

११ वही : पृ० २९

१२ दक्खिनी हिन्दी पृ० ३६

१३ दक्खिनी हिन्दी : पृ० —६५

१४ "In the 17th centuary, Khari Boli had not only become the language for trade and commerce throughout the big towns of Hindustan, it had also acquired

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

the status of an international language, the medium of commercial and cultural inter-course among the various peoples of India as well as foreigners." Indian Literature No. 1, 1953.

१५ अकबर ने जहाँगीर के पास उसके एक पत्र के उत्तर में ये पंक्तियाँ खड़ीबोली में लिख भेजी थीं—

"पूछी जो घड़ी मुझसे बराह आदत
तो वस्ल की सायत नहीं कुछ हाजत
हो जाती है मिलने से मुबारक सायत
सायत का बहाना है नहीं खुश हर सायत।
हिन्दी सिद्धान्त प्रकाश : दूसरा अंक, १६०६ पृ० १८

१६ Dayanand Saraswati enthralled audiance outside Northern India with his Hindustani eloquence, and could be understood by even the common people without difficulty." —M. K. Gandhi.

—Young India : 21st January, 1920

१७ "प्रसिद्ध इतिहासकार फ़रिश्ता ने लिखा है कि बहमनी राज्य के दफ्तरों में हिन्दी ज़वान प्रचलित थी और सल्तन ने उसे सरकारी ज़बान का पद दे रक्खा था।" दक्खिनी हिन्दी : पृ० : ३४

१८ ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली पृ० ५४

१९ जब अंग्रेजों के इकबाल का सितारा चमका तो फोर्टविलियम में सियासत के खिलाड़ियों ने इल्म वो दानिश के पासे फेंके। दूरबीनी से मुल्क की दो कौमों को, जो एक हजार साल की मेहनत और जद्दोजहद के बाद एक बनी थी, जिसका तमादन, जिसकी जवान और जिसकी सियासत एक हो रही थी, उसको फिर दो कौमों में बाँटकर अलहदा-अलहदा करने के लिए कोशिशें शुरू कीं।' —मौलवी सुलेमान नदवी:

उद्धृत: विचार धारा: पृ० ७६: १९४८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग्रेजों ने दो जातियों के लिए दो भाषाओं के गलत सिद्धान्त को ग्रहण करके एक ही वस्तु में भेद डालकर उसमें बहुत बड़ा अन्तर पैदा कर दिया।'—ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली: पृ० ५६ .

२० खड़ी बोली का पद्य: भाग १४: पृ० १, ६, ४ भूमिका

२१ 'It is indeed a serious mistake to think Urdu a different language from Hindi. It is a part of Hindi nay, it is Hindi itself.' गोविंद प्रसाद of अलमोड़ा

In Bengal the language of the courts contains no less than 30 percent of Arabic, Persian and other foreign words, and still is acknowledged to be Bengali."

—Rajendra Lal Mitra : Indo-Aryans Vol. 2, 1881, Page 25

२२ "Pendatic Mauluvis may string together endless series of adjectives and substantives, and even adverbs, but they can never be put in concord without indenting on the services of Hindi verbs, Hindi inflections, Hindi case marks, Hindi pronouns and Hindi prepositions. Nothing could be more conclusive than this; the Grammar of the Urdu is unmistakly the same as that of Hindi, and it must follow, therefore that the Urdu is a Hindi and an Aryan dialect." —Rajendra Lal Mitra :

Indo-Aryans : vol. 2, 1881, Page 326—327

२३ हिन्दी भाषा: पृष्ट २

२४ "भारतेंदु जी ने फूलों का गुच्छा (१८८२ ई०), पं० प्रताप नारायण मिश्र ने 'मनकी लहर' (१८८५ ई०), श्रीधर पाठक ने 'एकान्त वासी योगी '(१८८६ ई०), पं० बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने कजली कादंबिनी' (१८९०ई०), बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'जोगीड़ों का संग्रह' (१८८७ ई०) लिखा।" ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली: पृष्ट ६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५ खड़ीबोली का पद्य : प्रथम भाग पृष्ट १४ तुलना कीजिए :

'पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसा री
हरियाली छा गई हमारे, सावन सरसा री
बादल आये आसमान में, धरती फूली री
अरी सुहागिन, भरी माँग में भूली-भूली री
बिजली चमकी, भाग सखी री दादुर बोले री
अन्ध प्राण ही बहो, उड़े पंछी अनमोले री

मंगल वर्षा: भवानीप्रसाद मिश्र

२६ '... ...इनकी (बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री जी की) यह चेष्टा हिन्दी का सर्वनाश करने के लिए है। बाबू साहब अनभिज्ञ अंग्रेज और बंगालियों को पुस्तकें दे दे कर चाहे जितने लम्बे-लम्बे सर्टि-फिकेट ले लें, हिन्दी के प्रकृत विद्वान् इस बात का कभी अनुमोदन न करेंगे।'

पं० राधाचरण गोस्वामी: हिन्दोस्थान ११ अप्रैल, १८८८ ई०

२७ 'ब्रजभाषा को न मानै ताको शाखामृग जानिए'

—पं० राधाचरण गोस्वामी

२८ ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली: पृ० ७७

२९—कंकर पत्थर डालने के सिवा यदि आप खड़ीबोली की कविता के राजमार्ग की रचना में और कुछ नहीं कर सकते, तो खैर यही किये जाइये।'

हिंदोस्थान : ३ अप्रैल : सन् १८८८ ई०

३० 'खड़ीबोली को छोड़कर ब्रजभाषा की शरण लेना हिन्दी की उस उन्नति में बाधा डालना है जो देश की उन्नति का मूलकारण है।' गोपालराम गहमरी

— समालोचक : भाग १, : अंक १, १९०२

३१ 'जामें रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२ 'खड़ी बोली वह भी ब्रजभाषा की बहिन ठहरी उसको अधिकार से कौन विमुख कर सकता है, गद्य मात्र की वह पूर्ण स्वामिनी है पद्य भी जितने प्रकार के उसमें हो सकते हैं हों।'

पं० प्रताप नारायण मिश्र :खड़ी बोली का आन्दोलन : पृ० ३४

३३ "Now-a-days no Hindu of upper India dreams of writing in any Indian language except Urdu or Hindi when he is writing prose; but when he takes to verse he instinctively adopts one of the old national dialects, such as Awadhi of Tulasidas or Brajbhakha of the blind-bard of Agra."

Linguistic Survey of India : Vol 1, Pt I 1927

पृ० १६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रो० श्रीमती सरोज प्रसाद

अयोध्या प्रसाद खत्री के कृतित्व का मूल्याङ्कण

स्वर्गीय अयोध्याप्रसाद खत्री एक संस्कारी व्यक्ति थे। उनकी शिक्षा सीमित थी। वे अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे परन्तु वे चाहते थे कि उनकी संतति शिक्षिता हो। उन्हें विरासत के रूप में न तो ज्ञान मिला था और न अर्थ की राशि। उन्होंने जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया था वह स्वयं अर्जित था। वे अध्ययनशील और कर्मठ व्यक्ति थे। उन्होंने साहित्य को एक नयीं चेतना दी, साहित्य के नवरूप का निर्माण किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आधुनिक साहित्य को भाव-प्राण बनाया। अयोध्याप्रसाद खत्री ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को नयी भाषा दी। उन्होंने हिन्दी के लिये मान सम्बन्धी एक नयी प्रतिमा प्रस्तुत की थी। उनका मत था कि उर्दू हिन्दी की एक शैली है, हिन्दी से अलग उसका कोई अपना अस्तित्व नहीं। उनकी धारणा थी कि जिस भाषा में हम गद्य लिख सकते हैं उसी में पद्य की भी रचना होनी चाहिए। राष्ट्रीय-एकता के लिये ऐसा होना परम आवश्यक था। उनकी यह धारणा उस वास्तविकता पर आधारित थी जिसके चलते संसार की जितनी भाषाएँ थीं उनमें अधिकाँश के गद्य-पद्य की भाषा एक थी। खत्री जी तक कविता की भाषा ब्रजभाषा थी और भारतेन्दु बाबू के प्रयास से गद्य की भाषा खड़ीबोली हो गयी थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतेन्दु बाबू ने यह चाहा था कि पद्य की भाषा भी खड़ीबोली हो। उन्होंने इस सम्बन्ध में चेष्टाएँ भी कीं पर उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। उन्होंने स्वयं यह स्वीकार कर लिया है कि वे खड़ीबोली में कविता करने में सफल न हो सके। उन्होंने भारत-मित्र के सम्पादक के समक्ष भी अपनी इस असफलता को स्वीकार किया था। अतः खत्री जी ने साहित्य के क्षेत्र में जो नया प्रयोग किया था वह साहित्य के लिए नवीन प्रयोग था। अपनी इन धारणाओं के प्रतिफलन के रूप में उन्होंने रचनाएँ कीं। उनकी रचनाओं की पोस्ट मार्टम परीक्षा करने की न मुझ में क्षमता है और न अपने को अधिकारी मानती हूँ। पर मैं यह मानती हूँ कि उनकी रचनाएं आधुनिक साहित्य के प्रारम्भिक पद चिन्ह हैं। उन्होंने साहित्य में जो एक क्रान्ति उपस्थित की थी और उस क्रान्ति से हिन्दी का जो रूप साहित्य को मिला था हिन्दी का वही रूप आज भारत की राष्ट्रभाषा का है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का रूप दिलाने वालों में हम खत्री जी को प्रथम कहें तो अत्युक्ति न होगी।

खत्री जी को जीवन में पूर्ण सफलता न मिली। फिर भी वे लक्ष्य तक पहुँचने के लिये मरन-वेला तक व्यस्त रहे। अपने पर उन्हें विश्वास था, कार्य करने की लगन थी। अपने जीवन काल में ही वे ध्रुवतारा की तरह चमके। एक प्रकार से वे भारतेन्दु के मरने के बाद और साहित्य के प्रांगन में द्विवेदी जी के आने के पूर्व वे साहित्य के एक प्रकार से आकर्षक केन्द्र थे। इस समय को हम खत्री युग कहें तो विवाद का विषय तो अवश्य होगा पर निष्पक्ष भाव से देखा जाये तो वह युग उनका था। उनकी चर्चाएँ हिन्दुस्तान में ही नहीं विलायत में भी हुई थीं। लोगों ने उनके जीवन में ही उन्हें खड़ीबोली कविता का प्रवर्त्तक मान लिया था। बाबू राधाकृष्ण दास ने नागरिक-प्रचारिणी पत्रिका को दिसम्बर १९०० कीं संख्या में स्वीकार किया है कि खत्री जी ही इस आन्दोलन के पिता और अगुआ है और बाबू श्यामसुन्दर दास, भारत मित्र के सम्पादक पं० श्रीधर पाठक और श्री राधाचरण गोस्वामी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि ने भी इसका अगुआ करार किया है।' यह उद्धरण सरस्वती से लिया गया है जिसका संपादन आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया था। द्विवेदी जी की यह आदत थी कि जो कोई लेख वे प्रकाशित करते थे उस लेख में कोई असंगति मालूम पड़ती थी उसपर वे टीका-टिप्पणी अवश्य करते थे। परन्तु उन्होंने ऊपर दिये गये उद्धरण के सम्बन्ध में कोई टीका-टिप्पणी नहीं की। इससे यह पता लगता है कि उन्होंने भी खत्रीजी को खड़ीबोली कविता का प्रवर्त्तक मान लिया था।

खत्री जी साहित्यिक दृष्टि से सुधारवादी थे। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में वे सुधार चाहते थे—भाषा, व्याकरण और छन्द तीनों में। इसी सुधारवादी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उन्होंने रचनाएँ आरम्भ कीं। उनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं :—

१. हिन्दी व्याकरण
२. खड़ीबोली का पद्य (दो भाग)
३. छोटी-छोटी बातों पर नुक्ताचीनी
४. संस्कृत-यावनी शब्द कोष
५. मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्दभेद
६. खड़ीबोली का आन्दोलन।

हिन्दी व्याकरण—

यह पुस्तक सन् १८७७ में प्रकाशित हुई। इसका दूसरा संस्करण पटना के खड्गविलास प्रेस में छपा था। खत्री जी पहले कुढ़नी के माइनर स्कूल के हेडमास्टर थे। हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों का प्रायः अभाव था। सन् १८७० में बिहार की पाठशालाओं में हिन्दी जारी कर दी गयी थी। लोगों की रुचि भी हिन्दी पढ़ने में थी। पर खेद की बात यह थी कि हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों का नितान्त अभाव था। हमारे प्रकाशक इस सम्बन्ध में उदासीन थे। उनकी उदासीनता का कारण बतलाते हुए बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन सीतामढ़ी के तृतीय अधिवेशन के सभापति स्वर्गीय शिवनन्दन सहाय ने अपने भाषण में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बताया है कि पुस्तक रचना में यहाँ के लोगों की उदासीनता का कारण यह था कि शिक्षा विभाग के कर्मचारियों को सदा यह चेष्टा रहा करती थी कि जिस पुस्तक में संस्कृत या उर्दू के शब्द हो उसे निकम्मी कह कर फेंक दें। और जो गली कूची में बोली जाने वाली भाषा हो उसी को पसन्द करें। और उसी को सच्ची हिन्दी समझें। इससे किसी-को ग्रंथ रचना में उत्साह नहीं हुआ।" फिर भी जब हिन्दी का प्रवेश स्कूलों में हो गया था उसके लिये पुस्तकों की रचना तो करनी ही थी। खत्री जी के मित्र मुंशी राधालाल ने भाषा बोधनी और हिन्दी का एक शब्द कोष तैयार किया। खत्री जी ने हिन्दी का व्याकरण उसी अभाव को दूर करने के लिए रचा। मुझे यह कहते हुए गौरव होता है कि भाषा-बोधनी, हिन्दी शब्द कोष और हिन्दी व्याकरण में तीनों पुस्तकें बिहार की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की आधारशिला रही हैं। यह सत्य है कि खत्री जी का व्याकरण हिन्दी का पहला व्याकरण नहीं है। उनके पहले भी कई व्याकरण लिखे गये थे। इस व्याकरण को लिखने में खत्रीजी ने अंग्रेजी के व्याकरण का अनुकरण किया था। उसे उन्होंने अन्य व्याकरण से अधिक सुगम और सुबोध बनाया था। इस व्याकरण की ओर ग्रियर्सन का भी ध्यान आकृष्ट हुआ था उन्होंने इस व्याकरण के सम्बन्ध में लिखा है।

"It contains a number of points which have not been dealt with in any other Hindi grammar written in the Vernaculer. It seems to be written in intelligible language and well adopted for school purposes."

अर्थात् इस व्याकरण में कई ऐसी बातें हैं जो किसी दूसरे हिन्दी-व्याकरण में नहीं पाई जाती हैं। यह पुस्तक उत्तम और सरल भाषा में लिखी गई है और स्कूलों के लिए परमोपयोगी है।

इस व्याकरण का साहित्यिक महत्व जो कुछ भी हो पर पाठ्य क्रम में इसका बहुत महत्व है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खड़ीबोली का पद्य—

खड़ीबोली में कविता हो सकती है यह प्रमाणित करने के लिये उन्होंने खड़ीबोली का पद्य दो भागों में प्रकाशित किया। पहले भाग का प्रकाशन सन् १८८७ में हुआ था उसका दूसरा संस्करण १८८८ में प्रकाशित हुआ। दूसरे संस्करण की छपाई लंडन में हुई और उसकी भूमिका विश्वविख्यात भाषा शास्त्री फ्रेडिक हेनरी पिन्कॉट ने लिखी। उन्होंने खत्री जी के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि इस पुस्तक के प्रकाशन में खत्री जी का यह उद्देश्य था कि अपने देश बासियों को यह समझा सके कि वे कविता से व्रजभाषा को त्याग करें और उर्दू की जगह पर नागरी लिपि का प्रचलन हो। पिनकाट के अनुसार खत्री जी चाहते थे कि दो दल के लोगों के बीच एक संतुलन स्थापित हो—पहले लोग भाषा छोड़े दूसरे लोग लिपि छोड़े और दोनों प्रकार के लोग खड़ीबोली की छत्र-छाया के अन्दर आ जुटें। पिनकॉट के अनुसार खत्री जी का लक्ष्य महान था' कारण वे प्रान्तीयता की छोटी-छोटी दिवालों को तोड़ना चाहते थे जो उत्तरीय भारत के बौद्धिक विकास की बाधाएँ थीं।

खड़ीबोली पद्य का दूसरा भाग सन् १८८९ में प्रकाशित हुआ। इन दोनों पुस्तकों में खत्री जी ने हिन्दी की ५ स्टाइल मान कर प्रत्येक स्टाइल की कविताओं का संकलन किया। खत्री जी ने हिन्दी की ५ शैलियाँ इस प्रकार मानी थीं—(१) ठेठ हिन्दी (२) पंडित स्टाइल की हिन्दी (३) मुन्शी स्टाइल की हिन्दी (४) मौलवी स्टाइल की हिन्दी (५) यूरेशियन स्टाइल की हिन्दी।[1]

---

१ I divide Khari-Boli into five classes namely—

Theth Hindi, Pandit Hindi, Munshi Hindi, Maulvi Hindi, Eurasian Hindi. Khariboli ka Padya-Introduction. Khatri Ayodhya Prasad.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन दोनों पुस्तकों की ओर साहित्य प्रेमी और भाषा शास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट हुआ। देश और विदेश दोनों में इसकी आलोचनाएँ हुईं। लंडन से प्रकाशित होने वाला पत्र 'ओवर लैंड मेल' में इसके सम्बन्ध में समालोचना प्रकाशित हुई। पिन्कॉट साहब ने उन पुस्तकों के सम्बन्ध में जो आलोचनाएँ हुई थीं उन पर प्रकाश डालते हुए कई पत्र खत्री जी के पास भेजे थे। आपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था—

Your endeavour to induce your country men to employ Khari Boli in Poetry in preference to Braja Bhasha is worthy of all praise and encouragment when Poetry is written; it should certainly be in the best and most elegant form of spoken language at the time it is written. Chand Bardai wrote in the language he spoke; so did Kabir; so did Tulsi Das; so did Nanak and so do all poets who speak out the thoughts of their hearts. It is only artificial versifiers who make up verses about feelings which are not their own, who waste their time in composing in old archaic or peculiar form of speech, the result is that the taste of the people bacomes corrupted and more attention is paid to the sound of the verse, than to its sense.

The goodness of Poetry depends more on the ideas expressed than on the language used. Too many modern Indian writers seem to think that a collection of high sounding words in measured lines, constitutes Poetry; hence they prefer the older forms of Hindi to give dignity to their compositions."

इस पुस्तक की ओर ग्रियर्सन का भी ध्यान गया था। उन्होंने खत्री जी को दो पत्र लिखे थे। पहले पत्र में उन्होंने खत्री जी को सूचित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया था कि खेद है कि उनकी समालोचना खत्री जी के लिये अनुपयोगी होगी। और बताया था कि वे इस धारणा के व्यक्ति हैं कि खड़ी बोली के लिये जो भी प्रयास किया जायगा वह असफल होगा। उन्होंने अपने उस पत्र में यह भी उल्लेख किया था कि बाबू हरिश्चन्द्र ने इस संबन्ध में विस्तार पूर्वक सोचा था और उनके तर्क में बल भी-मालूम होता है। दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा था कि उन्हें उनके प्रति दया आती है कि उन्होंने एक असम्भव कार्य के लिये इतना अधिक परिश्रम और अर्थ का दुरुपयोग किया है। इन अभिमतों से मुझे ऐसा लगता है कि ग्रियर्सन उनके प्रयासों का उचित मूल्यांकन नहीं कर पाये थे और यही कारण है कि जब वे भारतीय भाषाओं का इतिहास लिखने लगे तब उन्होंने उस पुस्तक में खत्री जी की उपेक्षा की।

भारतवर्ष में भी उस पुस्तक को लेकर कभी बाद-विवाद हुए। राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र, देवी प्रसाद दुर्ग, जगन्नाथ दास रत्नाकर इन सबों ने इस पुस्तक की कड़ी आलोचनाएँ की। जिस भाषा का प्रयोग खत्री जी ने किया था उसे लोगों ने गंवारू बोली कह कर व्यंग्य किया। राधाचरण गोस्वामी ने हिन्दुस्तान पत्रिका में ११-नवम्बर सन् १८८७ को यह उल्लेख किया खत्री जी ने पिचाशी कविता से समाज का सिर नीचा किया है। खड़ीबोली की कविता पिचाशी नहीं तो डाकिनी अवश्य ही कवि समाज में मानी जायेगी। उन्होंने आगे चलकर उसी पत्र में लिखा था कि कई कारणों से हम खड़ी बोली पद्य के विरोधी हैं। हमारे ग्रंथकार (अयोध्या प्रसाद खत्री) ने जो इसके उदाहरण में कविता दी है वह सर्वांश में विशुद्ध नहीं है वह आदर्श योग्य नहीं समझा जा सकता। पर इतने विरोध के बीच भी उस पुस्तक का स्वागत किया गया। स्वागत करने वालों में श्रीधर पाठक प्रमुख थे। बाद में नाथूराम शर्मा, बालमुकुन्द गुप्त और महाबीर प्रसाद द्विवेदी आदि भी समर्थन करने लगे थे कि इन पुस्तकों का महत्व इस बात मे है कि ये खड़ी कविता का प्रथम सोपान है जिस पर खड़े होकर हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद, पंत और निराला, सुभद्रा और महादेवी सभी ने मिलकर आधुनिक काव्य का निर्माण किया है।

छोटी-छोटी बातों में नुकताचीनी—

इस पुस्तक में अयोध्या प्रसाद खत्री के वे सभी निबन्ध संकलित हैं जिसमें उन्होंने अपने विरोधियों को चुनौती दी थी। उनकी भाषा-शैली का पर्दाफास किया था। कहा जाता है कि इस पुस्तक में दिये गये निबन्ध इसलिये लिखे गये थे कि उन्होंने बाबू श्याम सुन्दर दास को हिन्दी साहित्य के संबंध में सुझाव दिये थे। उन दिनों बाबू श्यामसुन्दर दास हिन्दी भाषा का इतिहास लिख रहे थे। पर दुर्भाग्यवश श्याम सुन्दर बाबू ने उनके सुझावों की उपेक्षा कर दी। उन्हों ने अपना लेख जनवरी १९०१ में सरस्वती में प्रकाशित कराया।—खत्री जी को दुःख हुआ कि बाबू सुन्दर दास ने उनके सुझावों पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने महावीर प्रसाद द्विवेदी का ध्यान अपने सुझावों की ओर आकृष्ट किया और आग्रह भी किया कि उनके सुझावों पर वे ध्यान दें और सरस्वती में उन्हें प्रकाशित करें। द्विवेदी जी ने भी उनके सुझावों पर ध्यान नहीं दिया।—सरस्वती में उन्हें प्रकाशित करना तो दूर की बात थी उन्होंने खत्री जी पर व्यंग्य करते हुए लिखा कि हर बातों में नुक्ता चीनी करना उन्हें शोभा नहीं देता। खत्री जी से उन्होंने अनुरोध भी किया था कि भगवान के लिये भविष्य में नुक्ता चीनी करना छोड़ दें। खत्री जी को इससे दुःख हुआ और छोटी-छोटी बातों में नुक्ता चीनी शीर्षक देकर कई निबन्ध लिखे और उन्हें प्रकाशित कराया। लोगों के आग्रह से उन निबन्धों को पुस्तक कार रूप में प्रकाशित कराया। इस पुस्तक से खत्री जी के व्यक्तित्व का हमें परिचय मिलता है। उसी पुस्तक में उन्होंने महावीर प्रसाद की शैली का भी विरोध किया था। द्विवेदी जी ने उसी पुस्तक में प्रकाशित एक पत्र का उल्लेख करते हुए 'सरस्वती' १९०५ में लिखा था—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे (खत्री जी) समालोचक भी थे। उनकी समालोचना से घर-बाहर का कोई भी आदमी न छूटा होगा। वे कभी-कभीं लोगों पर लेख भी लिखा करते थे। —बाबू साहब के हठी और विलक्षण होने का एक प्रमाण यह है कि आपलोगों की खानगी चिट्ठियाँ तक छाप-छाप कर उनकी गलतियाँ बताते थे।

संस्कृत यावनी शब्द कोष—

खत्री जी ने एक शब्दकोष तैयार किया था। संस्कृत के वे मूल शब्द जिनका प्रयोग उर्दू में किया जाता था उन सभी का संकलन उस शब्दकोष में था। खत्री जी की धारणा थी कि उर्दू हिन्दी की स्टाइल है। उनके अनुसार हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग समझना भाषा-विज्ञान की दृष्टि में भूल है। शमशुल उल्ला मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब आजाद ने अपने आवे हयात में लिखा है--'इतनी बात हर शख्स जानता है कि हमारी उर्दू जबान ब्रजभाषा से निकली है और ब्रजभाषा खास हिन्दुस्तानी जवान से। खत्री जी ने बताया है कि आना, जाना, खाना, पीना इत्यादि सारी क्रियाएँ हिन्दी और उर्दू की एक हैं। क्रियाओं में ही नहीं वे तो सर्वनाम और धातु रूप में भी हिन्दी और उर्दू के भेद नहीं मानते थे। बहुत अंश में बात ठीक भी थी। उर्दू के प्रसिद्ध कोष (फरहंगे आसामिया) में ५४ हजार उर्दू के शब्द हैं। उस शब्द-कोष के फरहंगवाले ने यह माना है कि जिसे वह उर्दू कहता है उसमें ३२००० हिन्दी के शब्द है। २२००० शब्द केवल बाहर के आये हैं। फरहंग साहब के अनुसार ये २२ सौ शब्द फोर्ट विलियम कॉलेज की भाषा-नीति की देन है। ये शब्द अरबी और फारसी के तत्सम शब्द हैं। जिनकी जानकार केवल मुल्लाओं को है। खत्री जी ने बहुत पहले ही फोर्ट विलियम कॉलेज की नीति का अन्दाज लगा लिया था। उन्होंने भविष्य वाणी की थी कि अगर समय रहते हम न चेते तो भाषा नीति के कारण भारत में बहुत बखेड़े उठ खड़े होंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी और उर्दू को समीप लाने के लिए उन्होंने इस शब्द कोष का निर्माण किया था।

मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्द भेद—

खत्री जी ने सन् १८७७ में हिन्दी व्याकरण लिखा था। इस व्याकरण के अन्त में उन्होंने लिखा कि छन्द विचार का प्रकरण दूसरे भाग में वे प्रकाशित करेंगे। उन्होंने खड़ी बोली पद्य के मथ भाग की भूमिका में लिखा है—सन् १८७७ ई० में मैंने "हिन्दी व्याकरण" लिखा था कि जिसके अन्त में 'छन्दों विचार' के विषय में दूसरे भाग में लिखने की मैंने सूचना दी थी। मैं भाषा छन्द को हिन्दी छन्द नहीं मानता हूँ और इसीलिये छन्दो-विचार लिखने के पहले हिन्दी छन्द जिसको मैं मानता हूँ—इस पुस्तक में दिखलाता हूँ खड़ीबोली के व्याकरण में व्रजभाषा को जगह देना और व्रजभाषा शब्दों को हिन्दी में Poetical License समझना हिन्दी व्याकरण की मेरी समझ में भूल है।—छन्द की हिन्दी को मैं 'पुरानी हिन्दी' और आधुनिक हिन्दी को खड़ीबोली हिन्दी कहता हूँ।" खड़ीबोली पद्य में इन्होंने छन्दों का उल्लेख तो किया है पर अपनी उन मान्यताओं का प्रतिपादन मौलवी स्टाइल की हिन्दी के छन्द भेद में ही किया है जिनके द्वारा यह सिद्ध किया है कि खड़ीबोली और व्रजभाषा भिन्न-भिन्न भाषायें हैं और उर्दू और खड़ीबोली में कोई अन्तर नहीं है।

खड़ी बोली का आन्दोलन

२६ फरवरी सन् १९०१ को खत्री जी ने श्यामसुन्दर बाबू को सूचित किया कि वे तीन पत्र निकालना चाहते हैं।

(१) खड़ी हिन्दी।
(२) अदालती हिन्दी।
(३) तिरहुता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब यह सूचना श्रीधर पाठक को मिली तब उन्होंने खत्रीजी को लिखा कि खड़ी हिन्दी के पहले अंक में वे तमाम लेखों का जो खड़ी बोली आन्दोलन के पक्ष-विपक्ष में छपे हैं संकलन हो।

इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने तमाम लेखों का संकलन करना आरम्भ किया। खड़ी हिन्दी का इन्होंने डैक्लेरेशन भी ले लिया था। परन्तु खेद है कि अकाल मृत्यु होने के कारण उसका प्रकाशन न करा सके। खड़ीबोली आन्दोलन को पुस्तक रूप में ७२ पृष्ठ छपवाया था। इस पुस्तक का प्रकाशन उनके मरने के पश्चात् उनके मित्र भुवनेश्वर मिश्र के सम्पादन में बाद में हुआ। इस पुस्तक में सन् १८८७ से सन् १८९० तक खड़ीबोली के पक्ष-विपक्ष में जितने भी निबन्ध प्रकाश में आये थे सभी का संकलन है। अनुसंधान के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त खत्री जी हिन्दी साहित्य का इतिहास भी लिखना चाहते थे। इन्होंने इस सम्बन्ध में बहुत-सी सामग्रियाँ इकट्ठी कर ली थीं। इस पुस्तक के प्रकाशन में उनका उद्देश्य था कि जिन सुझावों को उन्होंने बाबू श्यामसुन्दर दास और महावीर प्रसाद द्विवेदी के समक्ष रखा था उनका उपयोग वे हिन्दी के सिलसिलेवार इतिहास में करना चाहते थे। परन्तु यह अपने कार्य रूप में परिणत नहीं हो सका। अकाल मृत्यु हो जाने से यह योजना पूरी नहीं हो सकी। जो कुछ सामग्री इन्होंने इकट्ठी की वे समय सागर में खो गयी हैं। उनकी प्राप्ति का कोई साधन नहीं है।

आधुनिक हिन्दीसाहित्य के व्यापक क्षेत्र और विशाल ग्रंथागार के बीच इन पुस्तकों का क्या स्थान है यह तो भाषा शास्त्री ही बता सकते हैं परन्तु इनका महत्व यह है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य की वे आरम्भिक सीढ़ी हैं जिन पर हिन्दी का भव्य-भवन निर्मित हुआ है।

अपने महान् साहित्यकार और युग स्रष्टा एवं खड़ीबोली के प्रवर्त्तक की स्मृति में हमारी यह तुच्छ श्रद्धांजली है।

—०—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमती अभिरामा

खत्री जी का आन्दोलन औरउस की क्रिया-प्रतिक्रिया

भारतेन्दु बाबू की मृत्यु (१८८५ ई०) और आचार्य द्विवेदी के सरस्वती का सम्पादकत्व ग्रहण (१९०३ ई०) के बीच का समय सचमुच में साहित्यिक-संक्रान्तिका समय कहा जा सकता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखकों ने इस काल को भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की विभाजन-रेखा के बीच में लुप्त कर दिया है, किन्तु उस समय की साहित्यिक विशेषताओं को देखते हुए उसे नगण्यता प्रदान करना कुछ बौद्धिक प्रतीत नहीं होता। हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास की ओर सर्व प्रथम दृष्टि डालने वाले एक विदेशी विद्वान् डॉ० अब्राहम जार्ज ग्रियसर्न थे। उन्होंने 'द माडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' नाम से पहला हिन्दी-साहित्य का इतिहास 'द जर्नल आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग १,१८८८ ई० के विशेषाङ्क रूप में प्रकाशित कराया था। यदि उन्होंने खत्री जी के हिन्दी-खड़ी बोली कविता का आन्दोलन और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं पर विचार नहीं किया तो कुछ असंगत प्रतीत नहीं होता। उन्होंने स्वयं उस आन्दोलन में भाग लिया था और खत्री जी की भाषा-विषयक मान्यताओं का विरोध किया था। जिस समय उनकी पुस्तक प्रकाशित हुई थी उस समय तक खत्री जी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'खड़ी बोली का पद्य' पहिला भाग ही प्रकाशित हो पाया था और खड़ी बोली तथा व्रजभाषा के समर्थकों के बीच विवाद का आरंभ ही हुआ था। उनका लेख-युद्ध परिणति की परिधि तब तक नहीं छू सका था। परन्तु उनके बाद के हिन्दुस्तानी इतिहास लेखकों ने भी उस महत्व पूर्ण साहित्यिक विवाद काल पर विचार नहीं किया है। प्रायः सभी लेखकों ने खत्री जी के अनुष्ठान की अवहेलना की है नहीं तो दो शब्दों में खत्री जी को 'खड़ी बोली पद्य का आन्दोलन कर्त्ता' कहकर चलते बने हैं। यह बिहार का दुर्भाग्य है कि प्रतिभा की परख वास्तविकता की कसौटी पर अब तक नहीं की गयी है। हिन्दी के सर्वप्रथम गीतिकार कवि विद्यापति को जब आचार्य शुक्ल जैसे मनीषी आलोचक ने चलता किया और अवधी के महाकवि 'तुलसी' को व्रजभाषा के शिरोमणि कवि 'सूर' से श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया तो आगे चलकर उन्होंने बिहार के सर्व प्रथम प्राचीन गद्यकार ज्योतिरीश्वर ठाकुर, आधुनिक काल की गद्य-शैली के निर्माता सदल मिश्र, तथा खड़ी बोली पद्य के साहित्यिक स्वरूप के प्राण प्रतिष्ठाता अयोध्या प्रसाद खत्री की ओर ध्यान नहीं दिया तो आश्चर्य ही था! मालूम होता है कि शुक्ल जी बुद्धि की पकड़ में जितनी बातें आ सकी थीं उन्हें ही अपने सिद्धान्त के आलोक सूत्र में गुम्फित किया और बाकी को, चाहे वे इतिहास-निर्माण की दृष्टि से कितना भी महत्त्व क्यों न रहते हों, छोड़ दिया है। उनके बाद क इतिहासकारों ने शुक्ल जी का ही आँख मूँद कर अनुसरण किया है, या नवीन दृष्टिकोण के चक्र में उसे घूमा रखा है। यह कहने में मुझे असंगत प्रतीत नहीं होता कि जिस प्रकार जैसा कि श्री उमा-शंकर जी ने अपने निबंध अयोध्या प्रसाद खत्री एक परिचय में लिखा है, "भारतेन्दु जी ने काव्य क्षेत्र में भावगत क्रान्ति की है, खत्री जी ने भावगत क्रान्ति की है। भारतेन्दु जी ने जिस पहलू को छोड़ दिया था, उस पर खत्री जी ने जम कर विचार किया है।" उन्होंने प्रथम-प्रथम शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से खड़ी बोली हिन्दी को काव्य-भाषा का स्वरूप देने का आन्दोलन किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसा सम्मान हमने भारतेन्दु बाबू तथा आचार्य द्विवेदी जी को इतिहास में उनके नाम पर युग निर्धारण कर दिया है, वैसा ही, उदारता से कवि भारतेन्दु की मृत्यु और द्विवेदी जी के हिन्दी-क्षेत्र में प्रवेश के बीच के समय को खत्री युग कहें तो हिन्दी साहित्य के इतिहास की काया पलट होगी। उसकी अपूर्णता की खाई कदाचित् इस प्रयास से भर चलेगी। हमारे इतिहास में बहुतों की सेवाएँ अज्ञान-गर्भस्थ हैं, उनपर समुचित विचार होना चाहिए।

खत्रीजी सच्चे अर्थ में हिन्दी-हितैषी थे। उन्होंने हिन्दी के अन्तर्गत विभिन्न शैलियों का विश्लेषण कर अपने उदारतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उर्दू हिन्दुओं के लिए अस्पृश्य हो गयी थी। उन्हें उर्दू के नाम की छाया भी भूत-जैसी डरावनी लगती थी; इस प्रकार की संकुचित कट्टरवृत्ति को दूर करने का भरसक प्रयास खत्रीजी ने किया है। उन्होंने ब्रजभाषा को एक अलग भाषा ही कहा है। इस प्रकार खत्री-जी ने उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का समादर किया है। किन्तु उस समय के अदूरदर्शी तथा कट्टरपंथी लोगों को उनकी भाषा-नीति समझ में न आयी और कुछ लोगों ने एक बहुत बड़ा विवाद खड़ा कर दिया। खत्री जी के 'खड़ी बोली का पद्य' दूसरा भाग (१८८७ ई०) के प्रकाशित होते ही, खड़ीबोली और ब्रजभाषा के समर्थकों ने विवाद करना शुरू किया।

ब्रजभाषा के अनन्य सेवी राधाचरण गोस्वामी ने सबसे पहले खत्री जी की भाषा-नीति का विरोध ११ नवम्बर १८८७ के हिन्दोस्तान में एक पत्र छपवा कर किया। उसमें उन्होंने लिखा—"आजकल हमारे कई भाइयों ने इस बात का आन्दोलन आरंभ किया है कि जैसी हिन्दी में गद्य लिखा जाता है, वैसी ही हिन्दी में पद्य भी लिखा जाया करे, अब इस प्रकार की भाषा में छंद रचना करने में कई आपत्ति है। प्रथम तो भाषा के कवित्त, सवैया आदि छंदों में ऐसी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता, तब भाषा के प्रसिद्ध छंद छोड़कर उर्दू के बैत शैर गजल आदि का अनुकरण करना पड़ता है, पर फारसी शब्दों के होने से उसमें भी साहित्य नहीं आता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

......तब ब्रज भाषा के इतने बड़े अमूल्य रत्न-भंडार को छोड़कर नए कंकर-पत्थर चुनना हिन्दी के लिए कुछ सौभाग्य की बात नहीं, परन्तु इस ब्रज-भाषा के भंडार को निकाल देने से फिर हिन्दी में क्या गौरव की सामग्री रहजायगी।" ..."इस समय में हमारे परम आतुर आर्य-समाजी और मिशनरी आदिकों ने भाषा-साहित्य की रीति और अलंकार आदि विना जाने कविता लिखने का आरंभ करके अपने हास्य के सिवा काव्य की उलटे छूरे से खूब हजामत की है।"

गोस्वामीजी के पत्र का उत्तर श्रीधर पाठक ने (हिन्दुस्तान, २० दिसम्बर १८८७) दिया जिसमें उन्होंने व्यक्त किया—"घनाक्षरी सवैया इत्यादि के अतिरिक्त अनेकों छन्द ऐसे हैं कि जिनमें खड़ीबोली की कविता बिना कठिनाई और बड़ी सुघराई के साथ हो सकती है।...खड़ीबोली में कई कारणों से कविता की विशेष आवश्यकता है।... यह खड़ीबोली इतनी प्रचलित है कि भारतवर्ष के सब कंठों में थोड़ी समझी जाती है। योरोपियन इसे यहाँ की Lingua Franca समझते हैं।"

गोस्वामीजी तथा पाठकजी की खड़ीबोली-पद्य सम्बन्धी आलोचना-प्रत्यालोचना ने खड़ीबोली और ब्रजभाषा के विवाद को ऐसा उग्ररूप दिया कि देखते-देखते उस समय के कवियों, साहित्यकारों तथा पत्रकारों के दो दल हो गए। गोस्वामीजी का पक्ष-समर्थन करने वालों में पंडित प्रताप नारायण मिश्र, पंडित शिवनाथ शर्मा, ग्रियर्सन आदि विद्वान् तथा पाठकजी का साथ देने वालों में केशवराम भट्ट, सम्पादक हिन्दुस्तान भुवनेश्वर मिश्र, पिन्कौट आदि विद्वान् थे।

पाठकजी के प्रतिवाद करने पर गोस्वामीजी ने पुनः १५ जनवरी १८८८ के हिन्दोस्तान में एक दूसरा लेख छपवाया। उस लेख में गोस्वामी जी ने पाठकजी के कथन कि "ब्रजभाषा पद्य सब जगह नहीं समझा जाता तथा खड़ीबोली प्रतिदिन बढ़ रही है" को अमान्य घोषित करते हुए कहा कि "ब्रजभाषा और खड़ीबोली में थोड़े से शब्दों के अलावा कोई विशेष अन्तर नहीं है।" और खड़ीबोली के कवियों पर आक्षेप करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए लिखा कि "खड़ीबोली में कविता करने की लालसा उन्हीं लोगों को विशेष होती है जो ब्रजभाषा में न कविता कर सकते न काव्य के तत्त्व को जानते हैं।" उन्हें यह भी भय था कि यदि "खड़ीबोली की कविता की चेष्टा की जाएगी तो फिर खड़ीबोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाएगा। इधर सरकारी पुस्तकों में फारसी शब्द घुस ही पड़े उधर पद्य में भी फारसी भरी गयी तो सहज ही झगड़ा निवहा।"

गोस्वामीजी ने अपने लेख में स्पष्ट रूप से खत्रीजी तथा पाठकजी के ऊपर व्यक्तिगत आक्षेप किया था। उनके उस आक्षेप का उत्तर पं० भुवनेश्वर मिश्र ने खड़ीबोली-आन्दोलन की भूमिका में दिया। उन्होंने लिखा कि "विशुद्ध हिन्दी साहित्य के पद्य विभाग का संस्कार आवश्यक समझ कर बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने कई सौ रुपये खर्च करके इस अभिप्राय से इस पुस्तक को छपवाया था और बिना मूल्य तथा बिना डाक महसूल हिन्दी-रसिकों के बीच वितरित किया था (और अब भी वितरित कर रहें हैं) कि लोगों का ध्यान खड़ीबोली पद्य की ओर झुके और इस विषय में आन्दोलन होये।......गोस्वामीजी को यह तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि इस पुस्तक के द्वारा लोगों का ध्यान खड़ीबोली पद्य की ओर निश्चय झुका और जैसा आन्दोलन इन पुस्तकों के द्वारा हुआ वैसा हिन्दी-साहित्य के इतिहास में और किसी पुस्तक के द्वारा नहीं हुआ।"

पाठकजी मौन बैठे रहने वाले नहीं थे। उन्होंने गोस्वामीजी के तर्कों का खण्डन ३ फरवरी १८८८ के हिन्दोस्तान में किया और उसी में ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के अन्तर को भी स्पष्ट किया। लगे हाथ उन्होंने ब्रजभाषा की दुर्बोधता पर भी प्रकाश डाला। ब्रजभाषा में पद्य-लालित्य के सम्बन्ध में लिखा कि 'ब्रजभाषा में एक शब्द के रूप अनेकों (प्रान्तीय) रीतियों पर किये जा सकते हैं।......उन्हें कवियों की इच्छा-नुसार आकार मिलता है।' खड़ीबोली के सम्बन्ध में लिखा कि 'अभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवियोंने अपनी शक्ति को भलीभाँति इस पर परीक्षित नहीं किया तो फिर क्योंकर यह कहा जा सकता है कि इसकी कविता में कविता के गुण नहीं आ सकते या इसकी भाषा काव्योपयोगी नहीं है ? इक साथ ही कोई कार्य उत्कृष्टता की परमावधि को नहीं पहुँच सकता। दूसरी ओर व्रजभाषा की कविता उन्नति की पराकाष्ठा से भी परे पहुँच चुकी है, अब उसके विश्राम का समय आ गया है।' खड़ी बोली के कवियों की असमर्थता-सम्बन्धी आक्षेप का भी उत्तर पाठक जी ने इसी पत्र में इन शब्दों में दिया है—"खड़ी बोली की लालसा अर्थ जिनको कहते हैं उनको नहीं वरन् उन लोगों की होती है जो खड़ी हिंदी के सच्चे हितैषी हैं. जो उस भाषा के गद्य की गद्दीपर पद्य की पदवी भी पहुँचाया चाहते हैं।" और अन्त में उनके उर्दू भय का निराकरण करते हुए लिखा—"खड़ी हिन्दी की कविता में उर्दू नहीं घुसने पायेगी जब हम हिन्दीं की प्रतिष्ठा के परिरक्षण में सदा सोंचते रहेंगे तो उर्दू की ताब क्या जो चौखट के भीतर पाँव रख सके।.........हिन्दी के गद्य या पद्य की उन्नति हमलोगों पर निर्भर है, सर्कार पर नहीं।" पाठकजी ने इसी पत्र में भविष्यवाणी भी की कि "इसके (खड़ी बोली) गद्य में वह गुण आवेंगे जो व्रजभाषा के उत्तमोत्तम पद्य में नहीं हैं और इसके काव्य में वह मनोहारित्व होगा जिसका हमें अनुभव भी नहीं है।"

गोस्वामी जी विचार से प्रगतिशील थे। अतः पाठकजी के उत्तर से संतुष्ट होकर उन्हों ने अपने दूसरे पत्र के साथ ही अपनी ओर से विवाद का अंत कर दिया, किन्तु २३ मार्च १८८८ के हिन्दोस्तान में अपील की कि "यह विषय सर्व साधारण है, इसके निर्णय के लिए सब विद्वानों का मत लेना चाहिए। अतएव एक सभा 'कविता विचारणी' नाम से नियत हो।" उक्त सभा के सम्बन्ध में फिर पाठकजी ने ४ अप्रैल १८८८ ई० के हिन्दोस्तान में लिखा—'सभा इतना ही कह सकेगी कि अमुक भाषा अमुक भाषा से अधिक मीठी है पर यह सहस्र सभाओं की सामर्थ्य नहीं कि किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषा में कविता बनने का निषेध कर सके और लोगों की प्रकृति प्रेरित प्रवृत्ति रोके। सभा की क्या अवश्यकता है? हम खड़ीबोली कविता की तारीफ करना, लीजिए, आप ही के कहने से बन्द किये देते हैं।" सभा के सम्बन्ध में खत्री जी का भी कुछ ऐसा ही विचार था। उन्हों ने भी लिखा था: "सभा अभी नहीं हो सकती, मैं अपनी हजार-पाँच-सौ पुस्तकें पहिले पश्चिमोत्तर देश में विद्वानों को बाँट दूँ, तब सभा होगी।"

इस पर गोस्वामी जी ने ११ अप्रैल १८८८ ई० में 'हिन्दोस्तान' में अन्तिम पत्र लिखा: "जो हो, हम इस विषय में एक बात से बहुत डरते हैं और क्षमा चाहते हैं कि हिन्दी की उन्नति चाहने वालों में परस्पर विरोध होना उचित नहीं है। इस झगड़े का आगे बढ़ना हानिप्रद है। आशा है कि सम्पादक हिन्दोस्तान इसका प्रबंध करेंगे।"

परन्तु विवाद का अन्त यहीं नहीं हो सका। गोस्वामीजी के मौन साधने के बाद पंडित प्रताप नारायण मिश्र भारतेन्दु जी के खड़ी बोली सम्बन्धी विचार को कि 'खड़ी बोली में कविता नहीं हो सकती,' अपना सिद्धान्त-सूत्र बनाकर विवाद के मैदान में आ डटे। उनके विरोध करने का कदाचित् मुख्य कारण यह भी था कि खत्री जी के भारतेन्दु जी को खड़ी बोली पद्य का विरोधी कहा था। मिश्र जी ने अपने ब्राह्मण पत्र में खड़ी बोली की तुलना 'बाँस' से तथा ब्रजभाषा की तुलना 'ईख' से करते हुए तथा खड़ी बोली के छन्द सम्बन्धी असुविधा की ओर संकेत करते हुए कहा: "कवियों को क्या पड़ी है कि किसी को भी समझाने को अपनी बोली बिगाड़े।"

इस पर पाठक जी ने ८ मार्च १८८८ ई० केहिन्दोस्तान में लिखा कि भारतेन्दु ने ब्रजभाषा की तरह खड़ी बोली कविता बनाने पर श्रम नहीं किया अन्यथा वे इसमें भी अच्छी कविता बना लेते। "यदि एक सत्कवि (भारतेन्दु) का यह कथन अकाट्य प्रमाण भी माना जाय तब भी इस प्रकार की कविता विषयक असम्भवता सिद्ध नहीं होती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी शिष्ट भाषा के विषय में यह कहना कि कविता के योग्य नहीं है भाषा के सामान्य स्वरूप और कविता के उद्देश्य से अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शन करना है। इसी लेख में पाठक जी ने ब्रजभाषा की उपमा 'बुड्ढी नायिका' से दी और खड़ी बोली के लिए लिखा कि अभी यह वयः संधि में ही है।' "पाठक जी के विचार को हिन्दोस्तान के सम्पादक ने बहुत पहले २० दिसम्बर १८८७ ई० की सम्पादकीय टिप्पणी में प्रकाश में लाया था और लिखा था कि "जितनी भाषा आजकल संसार में बोली गयी है प्रायः उन सब में कविता की गयी है और हम कोई कारण नहीं देखते जिसमें आजकल हिन्दी या खड़ी बोली इस सांसारिक नियम से बाहर हो।" पुनः पाठक जी का समर्थन करते हुए 'हिन्दोस्तान' के सम्पादक ने ३ अप्रेल १८८८ की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा : "श्री हरिश्चन्द्र के छोड़ने से क्या खड़ीं हिन्दी की कविता सदा-सर्वदा के लिए सब के छोड़ने योग्य हो गयी ?"

इससे स्पष्ट है, कि खड़ी बोली के समर्थक विद्वान् खड़ी बोली पद्य-की भाषा एक करना चाहते थे। वे भारतेन्दु के द्विभाषी-प्रयोग के सिद्धान्त के विरूद्ध थे। वे रूढ़िवादी कूप मण्डूकता के बिलकुल ही हिमायती नहीं थे। उनकी प्रगतिशील भावना को देख कर ही डॉ० रामविलाश शर्मा ने अपने 'भारतेन्दु युग' में लिखा है: "यदि भारतेन्दुबाबू का वही मत होता, तब भी उसका खण्डन आवश्यक था।" इस पर मिश्रजी ने एक लम्बा चौडा पत्र २१ मार्च १८८८ ई० में 'हिन्दुस्तान' में छपवाया जिसमें उन्होंने लिखा: "उर्दू के बीस-बाईस छन्दों को छोड़कर खड़ीबोली अन्य छन्दों के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त है।, फिर उन्होंने पाठकजी को चुनौती-देते हुए कहा: "यदि आप खड़ीबोली में काव्य रचना को असंभव नहीं मानते तो प्रत्यक्ष को क्या प्रमान ! कोई पिंगल लेके बैठिये (कहिये तो छन्दार्णव भेज दूँ) और इसी 'हिन्दुस्तान' में प्रत्येक छन्द के उदाहरण आप खड़ीबोली में दे चलिये, और मैं ब्रजभाषा में, फिर देखिये क्या होता है ?"

मिश्रजी का एक प्रबल आरोप खड़ीबोली की नीरसता के सम्बन्ध में था और दूसरा यह कि 'खड़ीबोली में कवियों की निरंकुशता बिल्कुल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंगु हो जाती है और उन्हें अचरज को आवश्यकतानुसार 'अचरज्ज' या प्रकृति के लिए 'परकीति' लिखने की छुट नहीं है। परन्तु मिश्रजी का विरोध इस पत्र में कुछ नम्र हो गया है। उन्होंने यह भी लिखा कि 'क्षमा करें हम खड़ीबोली के विरोधी होते तो हानि पर हानि सह के ब्राह्मण का सम्पादन क्यों करते इसके कविता के मांग की…दागवेल आप डालिये, यथासाध्य हम भी कंकर पत्थर डालते रहेंगे। परन्तु कविता इस भाषा की व्रजभाषा के देखे रूखी होती है और होगी।' …जो भाषा मुद्दत से कविता में व्यवहृत है उसे छोड़ कवि दूसरी भाषा नहीं स्वीकार कर सकते। जो कवि नहीं हैं वे चाहा करें।"

मिश्रजी की चुनौती को पाठकजी ने स्वीकार किया और ३ अप्रैल १८८८ के हिन्दुस्तान में लिखा कि 'हम आपकी छन्द रचना सम्बन्धी मांग को हर्ष पूर्वक स्वीकार करते हैं और इस 'हिन्दोस्तान' के रणक्षेत्र में संग्राम के हेतु उद्यत हैं परयाद रहे कि आप को भी व्रजभाषा में जो छन्द हम कहेंगे, बनाने पड़ेंगे, यद्यपि हमारा मत है कि जो छन्द जिस भाषा में अच्छा बैठे उसी को उस भाषा के लिए उपयुक्त समझना चाहिए। आपकी समझ में खड़ीबोली में २१ या २६ से अधिक छन्द नहीं आ सकते, और हम बीड़ा उठा कर अधिक नहीं तो २१ के ऊपर एक बिन्दी लगाकर इस भाषा में छन्द दिखला सकते हैं।'

अपने पत्र के अन्त में उन्होंने कहा—"मिश्रजी! एक बात तुम्हारे मुखार-विन्द से ठीक उच्चरित हुई है। हम उसे मानते हैं और उसके कारण आपको भी मानते हैं। अर्थात् यह कि अच्छे कवि जिस भाषा का चाहें गौरव बढ़ा सकते हैं। बस इस पर हम भी 'आमी' कह के झगड़ा बन्द करते हैं।"

सम्पादक हिन्दोस्तान ने भी ३ अप्रैल १८८८ ई० की सम्पादकीय टिप्पणी में मिश्रजी के कंकर-पत्थर डालते रहने के संकल्प की सराहना करते हुए लिखा—"…… कंकर पत्थर डालने के सिवा यदि आप खड़ी हिन्दी की कविता के राज मार्ग की रचना में और कुछ नहीं कर सकते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो यही किए जाइये, हमारा तो इससे भी खूब मतलब निकलेगा, सामान्य सड़क भी तो बिना हजारों कंकर पत्थर डालने वालों के जल्दी नहीं बन सकती। ये न हो तो इन्जीनियरों का काम ही कैसे चले ?"

इस विवाद में भाग लेने वालों में शिवनाथ शर्मा भी थे। उन्होंने भी ३० मार्च १८८८ ई० के 'हिन्दोस्तान' में 'ब्रजभाषा और नया पद्य' नाम से एक लेख छपवाया, जिसमें लिखा था—"यह तो हम बारम्बार कह चुके हैं कि ब्रजभाषा के सम्मुख खड़ीबोली का पद्य बिलकुल फीका मालूम होता है। ......खड़ी हिन्दी हमारी भाषा और उसकी उन्नति में हमारा गौरव है किन्तु इस विषय में वह ब्रजभाषा की बराबरी नहीं कर सकती और इसलिये उस रूपकी कोई आवश्यकता नहीं है। हरिश्चन्द्र के साथ ब्रजभाषा की समाप्ति बताना सर्वथा भूल है। अब भी उत्तम समस्या पूर्तियाँ ब्रजभाषा में हो रही हैं।"

विदेशी विद्वानों में पिन्कॉट ने खत्रीजी के 'खड़ीबोली का पद्य' पहिला भाग की भूमिका में उनके उद्योग की सराहना तो की ही है उस समय के खड़ीबोली के कविशिरोमणि पं० श्रीधर पाठक की कविता एकान्तवासी योगी पर लिखा—

"Your translation is a triamph of skill.......In verse such close adherence to an original while preserving fluency and poetic sweatness, is exceedingly rare indeed."

"This is a poem in the Hindi language uniting all the beauties of the original composition with all the faithfulness of a literal translation. There is something startening in the rare excellence of this composition, for the sweetness and melody of the verse charm the mind by the novelty of their graces."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु उनके मतों के विपरीत जार्ज ग्रियर्सन ने व्रजभाषा का पक्ष समर्थित किया है। खत्रीजी के अपनी पुस्तिका पर सम्मति माँगने पर उन्होंने जैसा जबाब दो पत्रों में दिया है, उससे उनकी साम्राज्यवादी नीति उनके भाषा-शास्त्रीय ज्ञान को अपादस्थ करती प्रतीत होती है। ग्रियर्सन की चिट्ठियों का संक्षेप है—(गया से प्रेषित—६ सितम्बर, १८८८ ई०)

(१) "I regret no criticism of mine can be of use to you, as I am strongly of opinion that all attempts at writing poetry in Khari Boli must be unsuccessful. The matter was fully discussed some year ago by Babu Harishchandra of Banares and I consider his arguments convincing."

(2) "………but I regret that I cannot agree with your conclusions. I think it is a great pity that so much labour and money has been spent upon an impossible task." (६ फरवरी, १८९० ई०)

अन्त में व्रजभाषा के समर्थकों के भारतेन्दु के नाम की दुहाई देने से चिढ़कर खत्रीजी ने एक लेख 'एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना' नाम से ८ अप्रैल १८८८ ई० को हिन्दोस्तान में छपवाया। इस में खत्रीजी ने बड़े ऊँचे स्वर में कहा कि 'बाबू हरिश्चन्द्र ईश्वर नहीं थे। उनको शब्द शास्त्र का कुछ भी बोध नहीं था। यदि फीलालोजी का ज्ञान होता तो खड़ीबोली में पद्य रचना नहीं हो सकती है ऐसा नहीं कहते।'

खत्रीजी के उक्त लेख के पश्चात् विरोधियों का विवाद ठंढ़ा पड़ गया और विवाद की दौड़ में खड़ीबोली की विजय हुई।

उपर्युक्त पत्रों के उद्धरणों से यह साफ जाहिर होता है कि व्रजभाषा और खड़ीबोली के पारस्परिक विवाद ने अन्त में खड़ीबोली के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रास्ता साफ कर दिया। ब्रजभाषा के समर्थकों का आग्रह उसकी मीठास के कारण था। उन्होंने खड़ीबोली में काव्योचित गुण का अभाव देखा था तथा उसमें कविता की धारा का अक्षुण्ण प्रवाह होने से उर्दू के आधिपत्यकी भी आशंका हुई थी। इन्हीं सब कारणों से उनलोगों ने खत्रीजी के आन्दोलन का विरोध किया था। परन्तु खड़ीबोली कविता के आग्रहियों ने उनके सारे तर्कों को स्थिर नहीं रहने दिया और अन्त में खड़ीबोली की कविता की मान्यता स्वीकृत करायी। एक मजेदार बात यह भी थी कि खड़ीबोली कविता के वे विरोधी स्वयं खड़ीबोली में भी कहीं अधिक मनोहारी कविताएँ लिखा करते थे। उनके वाद-विवाद के सम्बन्ध में डा० कपिलदेव सिंह ने अपने प्रबंधग्रंथ ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली में लिखा है कि "इन दोनों दलों के विद्वानों में एक दूसरी भाषा के प्रति घृणा भावना नहीं थी। दोनों हिन्दी साहित्य की उन्नति के इच्छुक थे। एक दल समयानुसार भाषा में परिवर्त्तन चाह रहा था किन्तु दूसरा दल काव्य की सरसता को लेकर अपनी जिद पर अड़ा हुआ था। ......इस प्रकार इस आन्दोलन से इस युग में जो नवीन चेतना उत्पन्न हुई तथा खड़ीबोली के कवियों ने जो पहला प्रगतिशील कदम इस दिशा की ओर उठाया, हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिये वह बहुत ही महत्वपूर्ण था।"

तो क्या हर्ज है कि हम हिन्दी प्रेमी इस काल को 'खत्री काल' कह कर हिन्दी खड़ीबोली पद्य के प्रचार और प्रसार में बावला बने अयोध्या प्रसाद खत्री की स्मृतिरक्षा करें क्योंकि वह एक मूक तपस्वी था, ताज का लोभी नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रो० उदयशंकर

अयोध्याप्रसाद खत्री की चारित्रिक विशेषताएँ

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' ईशावास्योपनिषद् के इस मंत्र के वृत्ति-स्वरूप श्री अयोध्या प्रसाद खत्री का अविर्भाव सन् १८५७ ई० के वलिदान से प्रसन्न क्रान्ति देवी के वरदान से भारतीय राष्ट्रीयता की गोद में हुआ। इस आविर्भूत विभूति ने राष्ट्रीयता को उसकी मूक भावनाओं की अभिव्यक्ति का सबल माध्यम प्रदान किया—वह माध्यम, जिसे स्वाधीन भारत ने राष्ट्रभाषा के पद पर अभिषिक्त किया। सचमुच भारत का वह सपूत ऋषि था, मनसा-वाचा ही नहीं, कर्मणा भी। इसलिए उसकी अर्चना ऋषि-अर्चना है, उसका अभिनन्दन ऋषि-ऋण चुकाना है। कभी-कभी हमें ऐसा लगता है कि हम उन्हें स्मरण कर सम्मान देते हैं। किन्तु सत्य यह नहीं है। उन्होंने कोई भी कार्य व्यवसाय-दृष्टि से—सम्मान अथवा किसी भी प्रकार के लाभ पाने की दृष्टि से नहीं किया था। उन्होंने तो सारे विरोधों को झेलकर भी अपना कर्त्तव्य किया था और कर्त्तव्य करने मात्र में ही आनन्द की अनुभूति की थी। उन्हें किसी प्रकार के प्रतिदान की कांक्षा नहीं थी। उनके अभिनन्दन से हम अपने को सम्मानित (कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा पुरुष हमारे बीच हुआ।) एवं लाभान्वित करते हैं, उनके चिन्तन से अपने पथ को प्रकाशित करते हैं। ऐसे महान् के स्मृति दिवस मनाने का आयोजन कर निश्चय ही आयोजकों ने अभिनन्दनीय कार्य किया है।

हिन्दी साहित्य एवं देश की जैसी निस्वार्थ एवं प्रभावशाली सेवा खत्री जी ने की है तथा हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों एवं अनुसंधायकों ने उनकी जैसी उपेक्षा की है, उसे देखते हुए खेद से साथ कहना पड़ता है कि उन्होंने तत्कालीन विकट स्थिति एवं परस्पर-विरोधिनी शक्तियों को ठीक से नहीं समझा है। यही नहीं उन्हें खब्ती, सनकी छोटी-छोटी बातों पर नुक्ता-चीनी करने की प्रवृत्ति वाला, जैसे विरुदों से आभूषित कर उनके व्यक्तित्व को हल्का कर देना चाहा है। लेकिन इसमें उन इतिहासकारों एवं अनुसंधायकों का विशेष दोष नहीं है, दोष तो खत्री जी का है जिन्होंने बिहार को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। हिन्दी साहित्य के इतिहास कार बिहार की ओर पीठ रखकर ही लेखन कार्य में प्रवृत्त हुए हैं एवं बिहार की भूमि इतिहासकारों एवं प्रकाशकों के लिए अनुर्व्वर सिद्ध हुई है। अतएव स्वाभाविक रूप से यहाँ की प्रतिभाएँ विकसित नहीं हो पातीं और जो अपनी प्रवल जीवनी शक्ति से विकसित होती भी हैं तो उन्हें अपेक्षित सम्मान नहीं मिल पाता। विद्यापति, दिनकर जैसे विरले प्रतिभावान कलाकार ही उपेक्षा की इस ऊँची दीवार के पार झाँक लेने में समर्थ होते हैं।

खत्री जी में कुछ ऐसे चारित्रिक गुण थे जो उन्हें सहज ही सामान्य कोटि से अलग कर देते हैं। आज भारत के सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं, जो एक से बढ़कर एक कही जा सकती हैं, पर इसकी सबसे बड़ी समस्या राष्ट्रिय चरित्र के ह्रास की है। ऐसे अवसर पर उनके चरित्रिक गुणों का स्मरण राष्ट्र के लिए बड़े लाभ का है। उनके विभिन्न गुणों में मैं वचन और कर्म की एकता के गुण को पहला स्थान देता हूँ। आज हमारे पथ-प्रदर्शक भी मंचपर से कुछ कहते हैं और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचरण कुछ करते हैं, अथवा उनके कथन और आचरण में छत्तीस का सम्बन्ध है, ऐसा कहना सत्य के अधिक निकट होगा। यही कारण है कि उनके लच्छेदार, प्रवाहपूर्ण, तालियों की गड़गड़ाहट से भरे भाषणों का भी लोगों पर रंच-मात्र प्रभाव नहीं पड़ता है। उनके बोलने की तारीफ की जाती है, उनसे सीखने की तमन्ना नहीं रखी जाती। आज हमारे स्वर कंठ से निकलते हैं, हृदय से नहीं। इसके विपरीत खत्री जी जो दिल से समझते थे, वही मुंह से कहते थे, और जो मुँह से कहते थे, वही व्यवहार में लाते थे। अपनी मान्यताओं से हिलना उन्होंने जाना ही न था। यही कारण था कि कई बार उन्हें अपने मित्रों की भी मुखालफत करनी पड़ी। उनके विचारों की पाषाण वत् दृढ़ता एवं तदनुसार यंत्रवत् कर्मठता के कारण ही लोग उन्हें खब्ती या सनकी समझने लगे। धुन के ऐसे पक्के थे कि लक्ष्य के साथ अपने को उन्होंने एकाकार कर दिया था। खड़ीबोली क आन्दोलन की चर्चा के साथ उनका नाम स्मरण नहीं आवे, यह सम्भव नहीं है। यह उनकी तन्मय साधना का ही परिणाम है कि तत्कालीन उद्भट विद्वान साहित्यकारों क घोर-विरोध के बावजूद भी खड़ीबोली पद्य की भाषा बन कर ही रही। चाहे कितना भी दुर्भेद्य क्यों न हो, एकाग्रचित्त की साधना से निश्चय ही लक्ष्य भेद होता है, इसका यह दृष्टान्त है।

उनकी संघर्ष की क्षमता भी अपूर्व थी। उन्होंने सिद्धान्त के मामले में समझौता करना सीखा ही न था। उचित है और अनुचित- इन दोनों में समझौते की बात ही कैसे उठ सकती है। उन्होंने विरोध करते समय व्यक्ति को नहीं देखा क्योंकि उन्हें व्यक्ति से राग-द्वेष नहीं था। उन्होंने किसी भी व्यक्ति के विचारों का विरोध किया जिसे उन्होंने उचित नहीं समझा, फिर वह विचार कितने भी महान् व्यक्ति का क्यों न हो। उनके विरोध के शब्द भी कुछ कम तीखे नहीं होते थे— सुनकर व्यक्ति का आपादमस्तक झन-झना उठता था ऐसी शक्ति थी उनके शब्दों में। उन्होंने जब देखा कि खड़ीबोली के माध्यम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के रूप में गृहीत होने में भारतेन्दु के खड़ी बोली सम्बन्धी निराशा-जनक वचन बाधा बनकर आ रहे हैं तो उन्होंने बड़े ही कड़े शब्दों में उसका भी प्रत्याख्यान किया। 'एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना' शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा—'व्रजभाषा के पक्षपाती बाबू हरिश्चन्द्र की दुहाई देते हैं इसलिए बाबू हरिश्चन्द्र के बचन का खंडन होना आवश्यक है, बाबू हरिश्चन्द्र ईश्वर नहीं थे, उनको शब्द शास्त्र फिलोलाजी का कुछ भी बोध नहीं था, यदि फिलोलाजी का ज्ञान होता तो खड़ीबोली में पद्य रचना नहीं हो सकती है, ऐसा नहीं कहते,.........।' भारतेन्दु-जैसे सर्वमान्य, लोकप्रिय, नवयुग के जनक कलाकार का इन शब्दों में विरोध करना उनके निर्भय और बेलौस स्वभाव का परिचायक है। उसी युग के खड़ी बोली के दूसरे प्रबल समर्थक श्रीधर पाठकने भारतेन्दु की इसी आपत्ति का निराकरण इन नरम शब्दों में किया था--'भारतेन्दु ने कविता को भोंड़ी कहा था न कि भाषा को। कविता का दोष कवि की असमर्थता प्रकट करता है भाषा की नहीं। तथा 'भारतेन्दु ने व्रज भाषा की तरह खड़ीबोली में कविता बनाने पर श्रम नहीं किया अन्यथा वे इसमें भी अच्छी कविता बना लेते।' इन दोनों उद्धरणों की तुलना से खत्री जी की निर्भीकता एवं निःसंगता सुस्पष्ट हो जाती है। उनकी लक्ष्य से एकरूपता एवं उसके लिए संघर्षशीलता का आभास डॉ० शिति-कंठ मिश्र की इन पंक्तियों से होता है—'खड़ी बोली का प्रचार करना ही खत्री जी ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। इसके विरुद्ध जहाँ कुछ भी किसी ने छापा या भाषण दिया, आप तुरन्त अपने आन्दोलन की पूरी फाइल भेज कर शास्त्रार्थ करने को तैयार हो जाते थे।' काश, सत्य की ऐसी निष्ठा, लक्ष्य का ऐसा आग्रह, संघर्ष की ऐसी क्षमता हमारे राष्ट्रिय चरित्र का अंग हो पातीं।

भारतेन्दु के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे बड़े उदार थे। हिन्दी साहित्यकारों की सहायता एवं प्रोत्साहन के निमित्त उनकी झोली सदा खुली रहती थी। फलतः हिन्दी साहित्यकारों की एक जमघट उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इर्दगिद इकट्ठी हो गई थी जिसे इतिहासकारों ने भारतेन्दु-मंडल की संज्ञा दी है। भारतेन्दु धनी व्यक्ति थे। किन्तु सामान्य स्थिति के होते हुए भी हिन्दी के लिए खत्री जी ने जिस उदारता एवं त्याग का परिचय दिया, उससे तो दधीचि का ही स्मरण आता है। उन्होंने 'खड़ीबोली पद्य' (दो भाग), तथा 'खड़ी बोली का आन्दोलन' अपने खर्चे से प्रकाशित करवाकर हजारों की संख्या में मुफ्त बटवाया। इसके अतिरिक्त उन्होंने न जाने कितने पत्र, पुस्तक, उत्कीर्णांक और मेमो आदि, खड़ी बोली और नागरी लिपि के प्रचारार्थ प्रकाशित कराके वितीर्ण किये। उन्होंने 'चम्पारण चंद्रिका में विज्ञापन दिया था कि, जो श्री रामचन्द्र का यश वर्णन खड़ी-बोली पद्य में करेगा उसे प्रति पद्य १०) पुरस्कार दिया जायगा। ये सब उनकी त्याग शीलता के प्रमाण है। वस्तुतः उन्होंने तो सम्पूर्ण जीवन की कमाई वल्कि जीवन ही खड़ीबोली और नागरीलिपि के प्रचार-कार्य में लगा दिया। उनके इर्दगिर्द भी भारतेन्दु-मंडल की ही भाँति खत्री-मंडल की स्थापना हो गई थी, यद्यपि साहित्यक इतिहासों में इसकी चर्चा नहीं मिलती। उस मंडल के कवि श्री महेश नारायण की कविता पर्याप्त सम्भावनाओं से पूर्ण है जिसकी ओर समीक्षकों का ध्यान जाना अभी शेष है। पर उनके साथ भी 'बिहार' का दुर्भाग्य लगा हुआ है।

खत्री जी की प्रगतिशीलता, दूरदर्शिता एवं विवेकशीलता भी निश्चित रूप से श्लाघनीय हैं। जबकि भारतेन्दु जैसे नवचेतना सम्पन्न, सर्वतोमुखी प्रतिभावाले समर्थ कलाकार भी खड़ी बोली में कविता लिखने में स्पष्टरूप से अपनी असमर्थता व्यक्त कर चुके थे, उन्होंने समय के रूख को पहचाना और खड़ी बोली की वकालत प्रारम्भ की। श्रीधर पाठक को छोड़कर, हिन्दी जगत् के जितने भी विद्वान एवं कलाकार थे, सबों ने खत्री जी का घोर विरोध किया। पर वे अचल की भाँति अचल रहे क्योंकि उन्होंने देख लिया था कि सारी काव्यात्मक विशेषताओं से रहित होने परभी खड़ी बोली प्राणवान है, सम्भावनाओं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से पूर्ण है, जबकि सारे काव्य-गुणों से अलंकृत होने पर भी व्रज भाषा अब निष्प्राण हो गई है।

उनकी सबसे अधिक विस्मयकारी, चौंकाने वाली मान्यता खड़ी बोली और उर्दू को एक भाषा मानने की थी। उन्होंने बड़े ही वैज्ञानिक रीति से यद्यपि पीछे चल कर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी इसका मखौल उड़ाया, खड़ी बोली हिन्दी के पाँच स्टाइल अथवा शैली निश्चित की और उर्दू को उन्ही में से एक जिसे 'उन्होंने मौलवी-स्टाइल' कहा, माना। इसकी प्रकृति ठेठ हिन्दी तथा संस्कृत के शब्दों का पूर्ण परित्याग कर अरबी फारसी शब्दों के ग्रहण की है। उनकी इस मान्यता ने विरोधियों के स्वर को और भी प्रखर कर दिया। इस सम्बन्ध में हिन्दी प्रदेश के तत्कालीन किसी भी मान्य विद्वान का समर्थन उन्हें नहीं प्राप्त हो सका—श्रीधर पाठक का भी नहीं। हिन्दी विद्वानों की मनः स्थिति उर्दू के अत्यन्त प्रतिकूल थी। उस समय आज के संयुक्त प्रदेश में उर्दू और हिन्दी भाषा तथा फारसी और देवनागरी लिपि के बीच घोर द्वन्द्व छिड़ा था। मुसलमानों का नागरी लिपि एवं हिन्दी भाषा का विरोध हिन्दी प्रेमियों को असह्य हो रहा था प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दुओं की जातीय भावना उग्ररूप धारण कर रही थी मुसलमानों के निकट सम्पर्क के कारण उर्दू को फारसी की ही तरह मुसलमानों की भाषा समझा जाने लगा था। हिन्दू मुसलमानों के बीच इस बढ़ते द्वेष को अंग्रेज शासकों एवं विद्वानों की ओर से भी पोषण तथा उत्तेजना मिल रही थी। हिन्दी के सारे विद्वानो इस प्रतिक्रिया में ही बहते चले जा रहे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके मण्डल के लोगों ने सिद्धान्त रूप से चाहा था— 'यवन संसरग-जात दोष गन हम से छूटै' और उर्दू को उन्हीं 'यवन संसर्ग जात दोष' के अन्तर्गत माना था। इस पृष्ठभूमि में जब हम खत्री जी को प्रतिक्रिया के बदले विवेक की अचल शिला पर स्थित देखते है तो उनकी प्रशंसा के लिए शब्द नहीं पाते हैं। गांधीजी ने राजनीतिक आवश्यकता से प्रेरित होकर हिन्दुस्तानी के रूप में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो बहुत बाद में करना चाहा था तथा साहित्यिक एवं भाषाशास्त्री नहीं होने के कारण जिसे ठीक रूप से उपस्थित नहीं कर सके थे, उसे ही मुंशी-स्टाइल के नाम से अयोध्या प्रसाद खत्री ने उनसे कुछ पाँच-छः दशक पूर्व ही समुचित रूप में उपस्थित किया था। यदि उस दिन उनके पथ-प्रदर्शन को हिन्दी-जगत ने स्वीकार कर लिया होता तो हिन्दू मुसलमानों की सांस्कृतिक एकता की नींव पड़ जाती—भारत को विभाजन का दुष्परिणाम नहीं भुगतना पड़ता।

कहा जा सकता है कि राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने भी खत्री जी से पहले इसी नीति का प्रवर्त्तन किया था। पर सितारे हिन्द और खत्री में बहुत अन्तर है। सितारे हिन्द की मान्यता सदा एक-सी नहीं रही, अन्त में उन्होंने देवनागरी लिपि में हिन्दी के नाम पर अरबी फारसी शब्दों से भरी हुई निखालिस उर्दू को प्रचारित करना प्रारम्भ कर दिया था। खत्री जी ने इसी को मौलवी स्टाइल की संज्ञा दी है और अवांछनीय ठहराया है। यह सितारेहिन्द और खत्री जी में महत्त्वपूर्ण अन्तर है। खत्री जी द्वारा प्रचारित मुंशी स्टाइल सचमुच राजमार्ग है, सहज भाषा है जिसमें किसी भी भाषा के शब्दों के ग्रहण अथवा परित्याग के लिए कोई आग्रह नहीं। सहज रूप में जो भी शब्द जनता ने अपना लिए हैं, चाहे वे ठेठ हिन्दी के हों अथवा संस्कृत के अथवा अरबी या फारसी के, 'मुंशी स्टाइल' में सबों के लिए स्थान है। वस्तुतः उनको खड़ीबोली पद्य के सम्पादक पिंकाट साहबने भी गलत समझा जब कि उन्हों ने लिखा' In fact he proposes a compromise', समझौते की दृष्टि 'सितारे हिन्द' की थी और बाद में गाँधीजी की हुई। खत्री जी का समझौते की नीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे सामान्य जनता की बोली से परिचित थे और उसमें ही काव्य-रचना का आन्दोलन कर रहे थे क्योंकि इससे एक ओर तो प्राणवान साहित्य की सर्जना होती और दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमानों के बीच भेदभाव की जो दीवार ऊपर से डाली जा रही थी, मिट जाती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सितारे हिन्द और खत्री जी के व्यक्तित्व में भी बड़ा अन्तर था। खत्री जी दृढ़ संकल्प के व्यक्ति थे जबकि सितारे हिन्द का संकल्प बदलता रहा। खत्री जी कट्टर सिद्धान्तवादी थे, किसी से अनुचित रूप से प्रभावित होना नहीं जानते थे। सितारे हिन्दी की तरह सरकारी मुलाजिम वे भी थे पर कहा जाता है कि वे सदा अपना त्याग-पत्र साथ रखते थे। दूसरी ओर सितारे-हिन्द अंग्रेज बहादुर के खैरख्वाह थे। अंग्रेजों ने उनकी राज-भक्ति के प्रमाण-स्वरूप उन्हें 'राजा' तथा 'सितारेहिन्द' की उपाधि दी थी। अतः उनका सरकारी नीति से प्रभावित होना 'स्वाभाविक ही था।

इसी तरह भारतेन्दु से भी खत्री जी का व्यक्तित्व विलक्षण है। यह सत्य है कि भारतेन्दु नव चेतना सम्पन्न एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले सफल कलाकार थे जबकि खत्री जी किसी भी प्रकार के साहित्य के रचयिता नहीं थे, परन्तु खत्री जी का क्षेत्र ही दूसरा था। वे साहित्यकार नहीं, साहित्य-नेता थे, साहित्य-गंगा का मार्ग-प्रदर्शक थे और ऐसे मार्ग प्रदर्शक की सेवा का महत्त्व किसी भी उच्च कोटि की साहित्य-सर्जना से कम नहीं होता। भारतेन्दु खड़ीबोली की छिपी सम्भावनाओं को नहीं जान सके जबकि खत्री जी ने उन्हें अच्छी तरह पहचाना। दूसरी बात, गद्य के माध्यम के रूप में भी भारतेन्दु ने खड़ीबोली में जिसको प्रश्रय दिया वह उदार होते हुए भी ठीक वही नहीं था जो खत्री जी चाहते थे। वह बहुत कुछ पंडित स्टाइल' के निकट की चीज थी जब कि मुंशी स्टाइल ही सचमुच जनता की भाषा थी तथा उसी को अपनाने से उर्दू और हिन्दी का विवाद समाप्त हो सकता था। इस तरह भाव के क्षेत्र में तो निश्चत रूप से भारतेन्दु ने युगानुरूप नेतृत्व दिया, साहित्य को जन-जीवन के निकट लाकर उसका पथ प्रशस्त किया किन्तु भाषा के सम्बन्ध में खत्री जी का नेतृत्व ही अधिक युक्तियुक्त, वैज्ञानिक, दूरदर्शी एवं लोक-हितकारी था, यद्यपि सर्वांश में वह स्वीकार नहीं किया गया।

श्रीधर पाठक के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। जहाँ तक पद्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली के समर्थन की बात है, वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खत्री जी के साथ हैं और उचित मार्ग पर हैं। पर जहाँ उन्होंने खत्री जी का साथ छोड़ दिया है अर्थात् हिन्दी-उर्दू के सम्बन्ध के विषय में, वहाँ खत्री जी का पथ ही प्रशंस्य, वैज्ञानिक एवं श्रेयस्कर है, यह बात दूसरी है कि लोगों ने उसे स्वीकार नहीं किया। किन्तु व्यक्ति की महत्ता सफलता से नहीं, विचारों की उपयुक्तता से आँकनी चाहिए। इस दृष्टि से खत्रीजी महान् थे।

बहुधा पद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली के प्रतिष्ठाता के रूप में इतिहासकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम लेते हैं। किन्तु यह उचित नहीं है। इसका श्रेय तो खत्रीजी को अथवा खत्री जी एवं पाठक जी को मिलना चाहिए। भारतेन्दु के तिरोभाव तथा द्विवेदी जी के सरस्वती सम्पादक के रूप में अविर्भाव के पहले बीच के युग में ही यह प्रश्न हल हो चुका था। इसी समय में अनेक महारथियों ने शक्तिशाली विरोध किया था, पर्याप्त वादविवाद, उत्तर-प्रत्युत्तर हुआ था और उनके कोलाहल की शान्ति के साथ ही खड़ी बोली पद्य के माध्यम के रूप में मान ली गई थी। द्विवेदी युग में खड़ी बोली बिना विरोध के फैलती गई। सारे नवोदित कवियों ने खड़ी बोली को अपनाया, द्विवेदी जी ने नींव डालने का नहीं, प्रासाद खड़ा करने का काम किया, साथ-साथ ही उन्हें भाषा के परिस्कार का श्रेय मिल सकता है, खड़ीबोली कविता का प्रवर्त्तक उन्हें नहीं कहा जा सकता। इसके निर्विवाद अधिकारी खत्री जी एवं उनके सहयोगी कवि श्रीधरपाठक हैं!

इस प्रकार हमने देखा कि श्री अयोध्या प्रसाद खत्री का व्यक्तित्व महान् है, अभिनन्दनीय है। उनकी सारी मान्यताएँ फलीभूत नहीं हुई, खड़ी बोली पद्य का माध्यम तो बनी पर हिन्दी उर्दू का विवाद नहीं मिट सका, फिर भी जितना हुआ, उसका भी मूल्य कम नहीं है। इतिहास उनकी देन को नहीं स्वीकार करके कुछ उनकी महत्ता को कम नहीं कर सकता, अपने को ही हल्का कर लेगा। खत्री जी अमर है और तब तक अमर रहेंगे जब तक खड़ी बोली का नाम रहेगा।

—o—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री राधा रमण टंडन

'खत्री जी के सम्बन्ध में कुछ....'

विश्लेषण-सम्पादक प्रो० विद्यानाथ मिश्र को बार-बार का आग्रह कि खत्री जी के सम्बन्ध में कुछ लिख दीजिए, मेरे लिए एक जटिल समस्या बन गयी। मैं कोई साहित्यकार नहीं कि उनके अनुरोध का पालन खुशी-खुशी कुछ नाज-नखरे के साथ करता। पत्रकार हूँ, फिर भी पत्रकारिता मेरा पेशा नहीं—एक 'हॉबी' है। सम्भवतः मेरे पत्रकार के 'मुखौटे' को ही देख कर प्रोफेसर साहब ने मुझे अपने आग्रह के अम्बार से मेरे वास्तविक स्वरूप को ढँक डाला। लाचार होकर मुझे भी कुछ लिखना पड़ रहा है। यहाँ मैं उनके 'कुछ लिख दीजिए' के अनुसार ही 'खत्री जी के सम्बन्ध में कुछ' लिख रहा हूँ।

खत्री जी ने (बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री) जिन्हें लोग बाबू साहब भी कहते थे, मुजफ्फरपुर के कलक्टर के पेशकार होने की हैसियत से हिन्दी-संसार में भी एक नया 'वसूल' पेश किया था। उस समय उनके उस वसूल को साहित्यिकों ने तह तो नहीं दिया, पर टिप्पणियाँ अवश्य कसीं। आज हम जिस खड़ीबोली हिन्दी को 'राष्ट्रियता' की रक्षा की स्वर्ण-मंजूषा बनाने की चिन्ता में लगे हुए हैं, यदि खत्री जी ने आज से सत्तर-पचहत्तर वर्ष पहले उसका आन्दोलन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं छेड़ा होता तो सम्भवत: आज हम उसकी कल्पना भी नहीं करते वास्तविकता की ठोस धरातल पर खड़े होने की बात उठती भी नहीं। तो, यह मानी हुई बात है कि खत्री जी ने हमें खड़ी बोली हिन्दी का उपहार दिया था, जो आज हमारा श्रृंगार बना है—हम इसे पाकर गौरव का अनुभव करते हैं।

जहाँ तक मैंने हिन्दी साहित्य के अध्ययन से अनुभव किया है, हमारा बिहार (जहाँ की हिन्दी को अन्य प्रान्त वालों ने बिहारी-हिन्दी कह कर अवहेलना की है) खड़ीबोली हिन्दी का जन्मदाता है। हम आरा-निवासी पंडित सदल मिश्र को भूल कर भी उनके नासिकेतोपाख्यान को नहीं भूल सकते। जिसके सम्बन्ध में 'हिन्दी-साहित्य' के विद्वानों का कहना है कि 'हिंन्दी गद्य' की वही सर्व प्रथम कृति है जिसका सीधा-सम्बन्ध हमारी आज की हिन्दी-से है। आचार्य प्रवर रामचन्द्र शुक्ल जैसे सचेत आलोचक ने भी उसके सम्बन्ध में लिखा है "…… गद्य की एक साथ परम्परा चलाने वाले चार लेखकों (मुंशी सदासुख लाल, इंशा अल्ला खाँ, पं० लल्लू लाल तथा पं० सदल मिश्र) में से आधुनिक हिन्दी का पूरा-पूरा आभास सदल मिश्र की भाषा में ही मिलता है। व्यवहारोपयोगी उन्हीं की भाषा ठहरती है।"

जिस प्रकार खड़ी बोली गद्य को जन्म देने का श्रेय पंडित सदल मिश्र को है उसी प्रकार भारतेन्दु काल में उनके समक्ष-ही खड़ी बोली पद्य के सविध प्रवर्त्तन का श्रेय बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री को है। किन्तु ये दोनों ही तपस्वी साहित्यकार विस्मृति के अन्धगर्भ में छिपा दिये गए। इनकी अर्चा की कौन कहे चर्चा तक नहीं होती। बिहार के साहित्यिकों के बाटे यही पड़ा भी है। आज हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम रटते नहीं अघाते। उन्हें वर्त्तमान काल का पिता मानते हैं। उन्हें हम राष्ट्रियता का प्रथम उद्घोषक समझते हैं। इनके नाम पर हमने हिन्दी के इतिहास में एक काल भी सुरक्षित कर रखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, पर आज कौन कह सकता है कि भारतेन्दु को सचमुच में भारतेन्दु बनाने का श्रेय बिहार के मौन साधक बाबू रामदीन सिंह को है। यदि वे नहीं होते तो शायद भारतेन्दु की कान्त—धवल कौमुदी-कली मुकुलित भी हो पाती ! बाबू रामदीन सिंह की हिन्दी-सेवा का मूल्याङ्कन कितने हिन्दी-प्रेमियों ने किया है ? इतिहास बताता है कि १८७० ई० के लगभग बिहार की पाठशालाओं में हिन्दी प्रचलित तो हो गयी पर पुस्तकों की भाषा गँवारी कर दी गयी थी। उनमें संस्कृत अथवा फारसी के शब्द नहीं व्यवहृत होने पाते थे। हिन्दी के सौभाग्य से १८७५ ई० में बाबू भूदेव मुखर्जी बिहार के शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर नियुक्त हुए। उन्होंने तत्कालीन डायरेक्टर से काफी लिखा-पढ़ी की और हिन्दी में संस्कृत शब्दों के व्यवहार की आज्ञा दिला दी। उन्हीं की विशेष प्रेरणा से १८७९ ई० में हिन्दी का कचहरी में प्रवेश हुआ। इस कार्य के लिए बाबू रामदीन सिंह पं० केशव राम भट्ट, श्री गोविन्द चरण भट्ट, बाबू अयोध्या प्रसाद तथा बाबू जंगली लाल ने आन्दोलन किया था। खत्री जी के समान ही पटना निवासी बाबू जंगली लाल आरा में कलक्टर के पेशकार थे। इन दोनों में समान कर्मी होने के नाते बड़ी मित्रता थी। बाबू अयोध्या प्रसाद के आग्रह से उन्होंने भी नागरीलिपि और हिन्दी भाषा का गौरव प्रमाणित करने का व्रत लिया था। इसके लिए एक बार जब पटना की कमिश्नरी में अमलों की जाँच नागरी, फारसी तथा रोमन लिपि की द्रुत गामिता तथा सुपाठ्यता के सम्बन्ध में हुई तब उन्होंने सत्तर फारसी लिखनेवालों तथा इक्कीस रोमन लिखने वालों से बहुत पहले, नागरीलिपि में बताई हुई बात लिखकर, उसे कचहरी के योग्य सिद्ध किया था। आज इतिहास के लेखक इन कर्मठों को चलता कर दें किन्तु सत्य का प्रकाश कभी मद्धिम नहीं पड़ता, वह कहीं-न-कहीं चमकता रहता ही है। खत्रीजी के सम्बन्ध में भी कुछ यही कहा जा सकता है, भले ही हम उन्हें देख कर भी अनदेखा बना रखें। मुझे यहाँ उन साहित्यिकों की उपेक्षा देख कर, बाबू शिवपूजन सहाय का स्मरण होता है। उन्होंने बिहार-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के १७वें अधिवेशन (पटना) के सभापति पद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अभिभाषण करते हुए क्षोभ प्रकट किया था कि हिन्दी संसार अपने कर्मठ-सेवियों को भुलाता जा रहा है। हमारे यहाँ उन साहित्यकारों की स्मृति-रक्षा का कोई प्रबंध नहीं है। उन्होंने कहा था—"आप कलकत्ता जाकर देखें, बंगीय साहित्य-परिषद् में प्रवेश करते समय उसके मुख्य द्वार पर ही नाट्याचार्य अर्द्धेन्दु शेखर मुस्तफी की शुभ्र प्रस्तर प्रतिमा के दर्शन होंगे। ......इतना ही नहीं उपर्युक्त परिषद् में आप राजा राममोहन राय की पगड़ी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की मेज-कुर्सी, बंकिमचन्द्र की कलम-दावात, रमेशचन्द्र दत्त की चिट्ठियाँ, अमृतलाल बसु की गुड़गुड़ी आदि अनेक स्मृति-चिह्नों को विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखकर बंगाली भाइयों के अतुलनीय मातृभाषा अनुराग पर चकित-पुलकित हो उठेंगे। किन्तु सोचिये तो सही, आपने अपने घर में पंडित केशव राम भट्ट, मुंशी राधालाल, बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री, पं० विजयानन्द त्रिपाठी, पंडित भुवनेश्वर मिश्र, बाबू यशोदानन्द अखौरी, पंडित चन्द्रशेखरधर शास्त्री, पंडितवर ईश्वरी प्रसाद शर्मा, कविकिंकर, पाण्डेय जगन्नाथ प्रसाद, प्रो० राधाकृष्ण झा, डा० काशी प्रसाद जायसवाल, कविवर 'सुमति', बाबू सोना सिंह चौधरी, आदि साहित्य सेवियों का एक भी स्मृति-चिन्ह न होना कितने परिताप की बात है। जिन्होंने साहित्य यज्ञ-कुण्ड के धधकाने में अपनी हड्डियों को चन्दन की चैलियाँ बना डाला उनको आपने सदा के लिए आँखों से ओझल ही नहीं किया अपने मस्तिष्क से भी उन्हें निर्वासित कर दिया परन्तु अब भी समय है और इन सब के स्मृति चिन्ह आज भी ढूँढे मिल सकते हैं।"

शिवजी का अभिभाषण अभिभाषण तक ही सीमित रहा, उसका प्रसार कार्यरूप में अभी तक किसी भी संस्था या साहित्य-प्रेमी ने नहीं किया। कम से कम हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का यह कर्त्तव्य था कि वह अपने संस्थापकों की जीवनी तथा उनके कृतित्व का प्रकाशन करता परन्तु उसकी ओर से भी अभी तक उन कर्मठ साहित्यकों की उपेक्षा ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती रही है। बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ही नहीं अपितु भारत वर्षीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन खत्री जी का ऋणी है। पं० सकल नारायण शर्मा ने चतुर्थ छपरा अधिवेशन में अपने अभिभाषण में खत्री जी के प्रति कितना मार्मिक उद्गार व्यक्त किया है—"स्व० राजवैद्य पं० बालगोबिन्द तिवारी की सम्मति तथा बा० रामकृष्ण दास की आर्थिक सहायता से आरा में नागरी प्रचारिणी सभा स्थापित हुई। उसने नागरी लिपि तथा हिन्दी-साहित्यकी उन्नति के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया और लोगों का ध्यान इधर विशेष रूप से आकृष्ट किया। कुछ दिन बाद मुजफ्फरपुर के स्व० बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने उक्त सभा को पचास रुपये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन करने के लिए दिये। सभा ने आन्दोलन भी किया, पर सफलता नहीं हुई। फिर बाबू साहब के उद्योग तथा व्यय से हरिहरक्षेत्र में एक छोटा-मोटा सम्मेलन हुआ। पर अधिक दिन तक न चल सका और उनके स्वर्गवासी हो जाने पर इसकी चर्चा ही बन्द हो गयी। ......फिर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इस प्रश्न को नये सिरे से उठाया तथा वह भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की जन्मदात्री बनी। पर इस विचार का आदि जनक मुजफ्फरपुर ही है। वहीं के लोगों ने इस प्रान्तीय सम्मेलन को भी जन्म दिया है। यह देखकर उक्त बाबूसाहब की आत्मा स्वर्ग में कितनी प्रसन्न होती होगी; यह कल्पना करने से भी आनन्द होता है।"

जहाँ तक मुझे स्मरण है, बिहार की भूमि में अबतक हुए अधिवेशनों में कुछ के सभापतियों ने ही कृपा-पूर्वक अभिभाषणों में खत्री जी की चर्चा की है। सर्वप्रथम पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने प्रथम सोनपुर-अधिवेशन (९ नवम्बर १९१९ ई०) के अवसर पर कहा था— "खड़ी बोली की कविता को खड़ा करने में बिहार ने पूरा उद्योग किया है। इसका श्रेय मुजफ्फरपुर के स्वर्गवासी बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री को है। बाबू साहब खड़ी बोली की कविता के बड़े हिमायती थे। आपने ही पहले-पहल खड़ी बोली में पद्यों का संग्रह सन् १८८५ ई० में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया था, इसका सम्पादन फ्रेडरिक पिनकौट साहब ने किया और लंडन के डबल्यू० एच० एलेन कम्पनी ने इसे छापा था।"

उसके बाद निम्नाङ्कित सभापतियों के उल्लेख महत्त्वपूर्ण होते हुए भी खत्री जी की हिन्दी-सेवा का वास्तविक मूल्याङ्कन किसी में नहीं हो पाया है। जो व्यक्ति हिन्दी-स्वरूप था और जिसने अपने जीवन का तुलसी-दल हिन्दी-भारती के चरणों में अर्पित कर चुका था उनके नामका केवल उल्लेख मात्र करना उनके प्रति न्याय करना नहीं कहा जा सकता। फिर भी संतोष इतना ही है कि कम से कम उनके कार्य की गुरुता का अन्दाज इन सभी वक्ताओं ने लगाया है।

श्री शिवनन्दन सहाय (तृतीय सीतामढ़ी अधिवेशन १४,१५ अक्टूबर १९२१) "पहले ब्रजभाषा में कविता होती थी। १८८५ में मुजफ्फरपुर के अयोध्या प्रसाद खत्री ने विहार में खड़ीबोली का आन्दोलन आरंभ किया। 'खड़ीबोली' नाम की पुस्तक के द्वितीय भाग में भारतेन्दु पर कुछ कटाक्ष करने से कई पत्रों ने उनकी कड़ी समालोचना की। ये हिन्दी के प्रेमी थे। इन्होंने कई पुस्तकों की रचना की थी।"

पं० सकलनारायण शर्मा–(चतुर्थ छपरा-अधिवेशन अक्टूबर, १९२२) "बिहार में ही पहले पहल खड़ीबोली (बोल-चाल) की भाषा में कविता करने के लिए आन्दोलन किया गया, जिसके मुखिया बाबू अयोध्या प्रसाद जी थे। उसमें पूरी सफलता मिली।"

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर (छठाँ अधिवेशन१९२४ ई०) "पर सच पूछिए तो खड़ीबोली के आदि पक्षपाती और समालोचक इसी नगर के श्री बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री हुए थे, जिनका खड़ीबोली कविता संग्रह' प्रथम भाग प्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी मिस्टर फ्रेडरिक पिनकाट से सम्पादित होकर लण्डन नगर में प्रथमतः प्रकाशित हुआ था। बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री को इसी विषय में स्वर्गीय पं० अम्बिका दत्त व्यास से जो लेख-युद्ध हुआ था, उसका सुखद स्मरण तबतक हमारे अनेक वयस्क हिन्दी प्रेमियों को है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री यशोदानन्द अखौरीः-(त्रयोदश अधिवेशन, पूर्णियाँ १९२६ ई०) " जिस खड़ीबोली कविता का आज बोलबाला है, सर्वप्रथम उस खड़ी बोली में कविता करने का आन्दोलन मुजफ्फरपुर जिले के श्री अयोध्या प्रसाद खत्री ने सं० १९४२-४३ (सन् १८८५-८६) में उठाया था। भारतेन्दु का युग था। उनके प्रयत्न का खूब विरोध हुआ। फिर भी वह अपने पथ पर अटल रहे। उनके नाम पर आज कितने वर्त्तमान कवि की कलम भूल कर भी उठी है? कितने को इस बात का ज्ञान है? आज खड़ीबोली में कविता करने का शंख बज रहा है पर आज के लोग उस पहले-पहल फूँकने वाले का नाम तक भूल गये। उन्होंने 'खड़ीबोली' नामकी कविता के संग्रह की पहली पुस्तक इङ्गलैंड में छपवाई।"

श्री मनोरंजन प्रसाद सिंह (१८वाँ मोतिहारी अधिवेशन, १२ अप्रैल १९४२) "वर्त्तमान हिन्दी-पद्य में आज जिस खड़ीबोली का बोलबाला है, उसके लिए पहले-पहल शोर मचाने वाले बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री जी बिहार के ही थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उनका मजाकसा उड़ाया है. किन्तु धुनी लोगों का इस प्रकार मजाक उड़ाया जाना कोई नयी बात नहीं है। हिन्दी साहित्य खत्री जी की सेवाओं को भूल नहीं सकता और उन्हें एक नये आन्दोलन के प्रवर्त्तक के रूप में याद करेगा। बिहार को सदा इस बात का नाज रहेगा।"

प्रि० मनोरंजन जी का उपर्युक्त कथन उनकी भावुकता पूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति है। इतिहास-ग्रंथों के रचयिताओं को कम से कम साहित्य के विद्वान होने के नाते निष्पक्ष न्यायाधीश के समान हिन्दी-सेवियों का मूल्याङ्कन करते समय खत्री जी की निर्भीक हिन्दी-सेवा तथा खड़ीबोली पद्य के प्रवर्त्तन के लिए उनके स्वत्व-त्याग का विवेचन करना ही चाहिये था। किन्तु जब रामचन्द्र शुक्ल जैसे गम्भीर विद्वान ने खत्री जी का व्यंग्य—चित्र तैयार किया तो औरों के सम्बन्ध में पूछना ही क्या, जिन लोगों ने बिहार की ओर से मुँह फेर कर इतिहासों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना की है। बाबा वाक्यम् प्रमाणम् के समान शुक्ल जी के बाद के विद्वानों की दृष्टि में खत्री जी की सेवा उतनी ही नगण्य थी, जितना शुक्ल जी ने लिख दिया था। फिर भी कुछ ऐसे भी इतिहास-कार हुए हैं जिन्होंने हमारे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापतियों के समान अपने इतिहासों में खत्री जी का स्मरण किया है। जैसे हिन्दी साहित्य की परम्परा में प्रो० हंसराज अग्रवाल लिखते हैं:—

"खड़ी बोली को पद्य की भाषा के रूप में स्वीकृत करने में सर्वप्रथम आन्दोलनकर्त्ता मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री थे। उन्होंने खड़ी बोली का पक्ष-समर्थन करते हुए एक खड़ी बोली का आन्दोलन नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने ब्रजभाषा तथा अवधी को हिन्दी मानने से ही इन्कार कर दिया। उन्होंने अपने व्याख्यानों तथा लेखों द्वारा अपने प्रचार को और भी उग्र रूप प्रदान किया, परिणाम स्वरूप ब्रजभाषा के समर्थक भी धीरे-धीरे मैदान में आए और उन्होंने ब्रजभाषा के समर्थन में खड़ी बोली के अनेक दोषों को प्रदर्शित करते हुए ब्रजभाषा को काव्य भाषा के रूप में जारी रखने का बलपूर्वक समर्थन किया। ब्रजभाषा के इन समर्थकों में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र तथा रायदेवीप्रसाद पूर्ण मुख्य थे। परन्तु धीरे-धीरे बाबू अ० प्र० के आन्दोलन को पर्याप्त सफलता मिलने लगी और अनेक कवियों ने खड़ी बोली में रचना प्रारंभ की। यहाँ तक कि खड़ी बोली में अपनी काव्य कुशलता का परिचय देना प्रारंभ किया। द्विवेदी जी के आगमन से पूर्व ही यह बाद विवाद समाप्त होचुका था, और ब्रजभाषा के अनेक उत्कृष्ठ कवि रायदेवी प्रसाद पूर्ण भी–खड़ी बोली में कविता करने लगे।"

मुजफ्फरपुर बहुत पुराना साहित्यिक स्थान है। यहाँ पहले प्रायः प्रतिवर्ष बाहर के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् आया करते थे। मुझे खूब याद है कि मेरे पिताजी साहित्यिकों के सम्मान में लगे रहते थे। कोई न कोई साहित्यिक मेरे घर पर अवश्य ठहरे हुए होते थे। स्वर्गीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के साथ मेरे पिताजी की काफी दोस्ती थी। वे बराबर ही मेरे यहाँ आते। खत्री जी के सम्बन्ध में उनसे बहुत कुछ अनोखी बातें सुनने में आयी थीं। उस समय मैं बहुत छोटा था।

पिता जी के साथ उनकी जब खत्री जी के सम्बन्ध में चर्चा चलती तो मैं भीतर ही भीतर हंसता। किन्तु आज समझ रहा हूँ कि वह व्यक्ति कितना बड़ा त्यागी था। हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए उसने क्या-क्या नहीं किया था। हिन्दी संसार को इतनी ही जानकारी है कि खत्री जी ने हिन्दी प्रचार के लिए पुस्तकें लिखीं, पुस्तकें छपवायीं और उन्हें बिना मूल्य वितीर्ण किया, पर उनकी हिन्दी-सेवा इतने ही तक सीमित नहीं थी। जैसे आज-कल के चतुर व्यवसायी नगरों में बड़े-बड़े मकानों की दीवाल पर मोटे अच्छरों में अपनी वस्तुओं का इस्तहार लिखते हैं, उसी तरह उन दिनों खत्री जी ने दीवालों पर 'शुद्ध-हिन्दी का व्यवहार करें' लिखवा दिया था। इतना ही नहीं उनका हिन्दी प्रेम पागलपन की सीमा पर पहुँच चुका था। वे अपने छाते पर भी 'खड़ीबोली में पद्य लिखिये' लिखवाए हुए थे। उन्हें देख कर लोग खूब हंसा करते, परन्तु उससे उनका साहस और बढ़ता रहता। उन्होंने अपने को हिन्दीमय बना लिया था। घर की कभी चिन्ता नहीं की। उनके एक मात्र पुत्र जयनारायण थे। उसकी भी देख-रेख की उन्हें फुर्सत नहीं थी। दिन में दस बजे से साढ़े चार बजे तक कचहरी में काम करते इसके बाद समय बचने पर हिन्दी प्रचार में घूमा करते। यही उनका जीवन क्रम था। चतुर्वेदी जी ने यह भी बताया कि जिस किसी से भेंट होती उससे विशुद्ध हिन्दी में बातें करते और 'जय हिन्दी' के अभिवादन से पूछते 'कहिये कोई लिटरेरी न्यूज' है। वे किसी अन्य विषय पर चर्चा करना नहीं चाहते थे। केवल हिन्दी की चर्चा करना उनका उद्देश्य था।

वे अपनी भाषा नीति में विश्वस्त थे! उनके सामने कोई समस्या थी ही नहीं तभी वे खड़ीबोली हिन्दी का झण्डा लेकर साहित्यिकों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वागत करते थे। उन्होंने भविष्य को उसी समय देखा था और आगामी समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत कर दिया था। अतः कहा जा सकता है कि वे अवतारी पुरुष थे। क्रान्तदर्शिता उनकी जन्मजात विशेषता थी तभी उन्होंने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया, उसमें उन्हें सफलता मिली। वे उसके फल को भोगने के लिए अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे, जैसे महात्मा गान्धी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद काल के शिकार हो गये। प्रत्येक महापुरुष के साथ शायद ऐसा ही होता है।

उस समय की हिन्दी की स्थिति और खत्री जी की लगन को साथ-साथ मिलाकर देखने से खत्री जी के अपूर्व व्यक्तित्व की रूप रेखा आप से आप खींच जाती है। कहना न होगा कि वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी भावना में जितनी ही कोमलता थी, संकल्प में उतनी ही कठोरता, जिन्होंने हिन्दी के लिए अपमानों का हलाहल पी लिया था और साक्षात् 'नीलकण्ठ'-जैसे हो गये थे। महाकवि प्रसाद के सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है:—

"शान्त गम्भीर सागर जो आकुल तरङ्गों को दबाकर धूप में मुस्कुरा उठा है, या फिर गहन आकाश जो झंझा और विद्युत् को हृदय में समाकर चाँदनी की हँसी-हँस रहा हैं।" मुझे अनुमान होता है ऐसा ही कुछ खत्री जी का भी व्यक्तित्व था। उनके व्यक्तित्व से ही प्रभावित होकर उनकी भाषा-नीति तथा खड़ी बोली की पद्य-रचना के आन्दोलन का समर्थन तत्कालीन विद्वानों तथा कवियों ने किया। जैसे भारतेन्दु की मण्डली थी वैसी ही खत्री जी के समर्थकों की एक मण्डली बन गयी थी। उनके समर्थकों में बिहार के बाहर के भी कवि और विद्वान थे। श्री धर पाठक जी को हम नहीं भूल सकते, जिन्होंने बिहारी न होते हुए भी खत्री जी का प्राणपन से समर्थन किया है। उनकी खड़ी बोली की कविताओं में आज के आलोचक छायावाद के तत्वों को ढूँढ निकालते हैं और उन्हें छायावाद का आदि कवि होने का मान देते हैं। वैसे ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके मण्डल के बाबू महेश नारायण थे जिनकी कविताओं में आज के प्रयोगवाद का बीज अंकुरित होता दिखाई देता है। तो कहना यही है कि खत्री जी और उनके मण्डल के कवियों की कृतियाँ हिन्दी के भविष्य की भावधाराओं एवं कला-तरंगों का उत्स-स्थल है। उदाहरण के लिए बाबू लक्ष्मी प्रसाद की कविताओं में द्विवेदीकालीन नीतिनिष्ठ इतिवृत्तात्मकता, श्री धर पाठक तथा राय सोहन लाल की कविताओं में कल्पना प्रवण स्वच्छन्द छायावादिता तथा बाबू महेश नारायण की कविताओं में बौद्धिक कला प्रधान प्रयोगवादिता।

खत्री जी के सम्बन्ध में इतना ही कुछ कहकर मैं अन्त में यही कुछ कहूँगा ऐसे भविष्य द्रष्टा साहित्य साधक के प्रति हिन्दी-संसार का बहुत बड़ा दायित्व है। विश्लेषण (आलोचना-पत्रिका) ने अपने दायित्व का निर्वाह किया है। इसने खत्री जी की स्मृति में एक अपूर्व अनुपम ग्रंथ भेंट दी है। यह सर्व प्रथम श्रद्धांजली है। मेरी कामना है कि हिन्दी-संस्थाए खत्री जी जैसे अन्य उपेक्षित साहित्यकारों की ओर भी ध्यान देंगीं और उनकी सेवाओं तथा कृतियों का स्वस्थ चेतना के आलोक में मूल्याङ्कन कर उनके काव्य के प्रति कृपणता न बरतेंगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महाशंकर

खत्रीजी की दृष्टि में राष्ट्रभाषा

भारत की राष्ट्र भाषा के पद पर जिस हिन्दी को जनता ने आसीन किया है; उसे उस स्थान पर पहुँचाने में साहित्योन्नायकों को अनेकानेक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ा है। ठीक उसी तरह-जिस तरह स्वाधीनता के लिए जन-नायकों को विभिन्न विपदाओं के साथ जूझना पड़ा था। भारतीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन जितना पुराना कहा जाता है, ठीक उतना ही पुराना हिन्दी-भाषा का आन्दोलन भी है।

राष्ट्रीयता की दृष्टि से भी स्वतन्त्रता की प्राप्ति में भाषा का बहुत बड़ा हाथ होता है, बल्कि यों कहना चाहिए कि भाषा की चेतना राष्ट्र-जीवन को समन्वय की शक्ति से सम्पन्न करती है। जिस समय स्वतन्त्रता की भावना देश के तत्कालीन नेताओं के मनस्सिन्धु में हिलोरें लेने लगी थी; उसी समय हिन्दी सेवियों के अन्तः करण में भारत के लिए एक भाषा का अभाव खटक रहा था, हृदय में कसक उत्पन्न कर चुकी थी। विदेशी भाषा और लिपि का प्रसार-प्रचार बड़े ही प्रभावशाली ढंग से जारी था। विदेशी सरकार थी, जिसे अधिक से अधिक काल तक भारत को परतन्त्र रखने की चेष्टा अथच उद्योग करना ही था—शासन-यन्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा मनोभावों को बदलकर। शासन बाह्य एवं स्थूल वस्तु है, मन के अवचेतन अंश को आकृष्ट करने का प्रयत्न आभ्यन्तरिक और सूक्ष्म। कहना न होगा कि इस कार्य में सफलता पाने के लिए विदेशी नीतिज्ञ पूरी तरह सतर्क थे। तासी और गिलक्राइस्ट के प्रयत्नों से फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यही था। लार्ड मेकॉले की नीति तभी फूल-फल सकती थी। महाकवि 'अकबर' ने शेर कहा था—

> "तोप खिसकी तो प्रोफेसर आए,
> जब बसूला गया तब रन्दा है।"

लेकिन भारत के मानस में अंग्रेजी-शासन-यन्त्र को तोड़ने-फोड़ने की प्रवृत्ति उभड़ चुकी थी! नाना साहब, ताँत्या टोपे, लक्ष्मी बाई, कुँवर सिंह और मुगल साम्राज्य के अन्तिम दीपक बहादुर शाह आदि जननायक कमर कस चुके थे, मैदान में उतर आये थे। क्रान्ति की चिनगारियाँ छिटक-छिटक कर जनता के अन्तस्तल में अंगार सुलगाने लगी थीं। फलस्वरूप १८५७ में सशस्त्र क्रान्ति की ज्वाला जाग उठी।

मगर उसकी असफलता का प्रधान कारण एक राष्ट्र भाषा का अभाव ही था।। यदि ऐसा न होता तो हम अधिक काल तक परतन्त्रता के वातावरण में साँस लेने को मजबूर न होते। क्योंकि उपर्युक्त जन नायकों में बहादुर शाह की मातृभाषा नाना साहब की मातृभाषा से भिन्न थी; इसी प्रकार ताँत्या टोपे, कुँवर सिंह और लक्ष्मीबाई की मातृभाषा सर्वथा भिन्न-भिन्न। जनता जो प्रान्त-प्रान्त जिले-जिले की अलग-अलग पञ्च कोशीय बोलियों के घेरे में घिरी भारत व्यापी क्रान्ति का अन्दाजा लगाने से अनभिज्ञ थी, पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण की अनेकानेक विभिन्नताओं में सीमित रहकर राष्ट्रीय चेतना से दूर थी, अतः भारतवर्ष के समस्त भाग तक इस स्वतन्त्रता आन्दोलन का सच्चा रूप प्रकट करना सम्भव न हो सका, वह सिर्फ सिपाहियों के विद्रोह के पर्दे में ढका रह गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड-खण्ड भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सके ऐसी भाषा एक मात्र संस्कृत ही थी; किन्तु वह पण्डितों की भाषा बन कर रह गई थी. साम्प्रदायिकता के कठघरे में उसे शैवों, शाक्तों और वैष्णवों ने बन्द कर रखा था। इसके पूर्व बौद्धों और जैनों ने पाली एवं अपभ्रंश के पदाघातों से उसको विमर्दित करने में कोई कोर कसर नहीं रखी। बाद - गोस्वामी तुलसीदास जी ने—'जिमि पाखंड विवाद ते लुप्त होहिं सद् ग्रन्थ।' के रूप अपने अनुभव को स्पष्ट किया। मगर, फूट डाल-कर शासन करने वाली सरकार भाषा की एकता स्थापित करके अपने पावों कुल्हारी क्यों मारने लगी? वह तो पूरी तरह सचेष्ट थी, कि भाषा छिन्न-भिन्न ही रहे जिससे जनता की सामुदायिक चेतना फूलने फलने न पावे; विदेशी सरकार के अधिकारी वर्ग तथा उसके दाएँ हाथ फ्रेंञ्च और वृटिश मिश्नरियाँ इसलिए जागरूक थीं। सन् सत्तावन साल को सरकार भूली न थी।

किन्तु भारत के हृदय में राष्ट्रभाषा के निमित्त अचेतन मानस के प्रतिक्रिया स्वरूप एक भावना का उदय हुआ—दिल्ली, आगरा के आस पास बोली जानेवाली भाषा को समुचित रूप देना। दिल्ली सदियों से भारतवर्ष की राजधानी थी; और इसके नागरिक खड़ीबोली के द्वारा ही प्रान्त-प्रान्त के अन्य भाषा-भाषी नागरिकों के साथ व्यावहारिक कार्यों एवं विचारों में समन्वय स्थापित करते थे।

यद्यपि भारतवर्ष के तत्कालीन साहित्यकार क्षेत्रीय भाषाओं में ही रचना किया करते थे। अवधी, व्रजभाषा, भोजपुरी और मैथिली के साथ-साथ राजस्थानी और पंजाबी भाषाएं उनके मनोभावों की अभि-व्यक्ति के साधन थीं। ये भाषाएँ यद्यपि एक दूसरी के उतनी दूर न थीं, जितनी मराठी, गुजराती बंगाली आदि; अतः खड़ी बोली को सामुदायिक भाषा के रूप में प्रश्रय देना अधिक उपयुक्त था। इसे राष्ट्रीयता की संवाहिका स्वीकृत करने एवं चरितार्थ करने का सर्व प्रथम प्रयास बिहार से ही हुआ। १८७० ई० में बिहार बंगाल की संयुक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरकार ने इसे बिहार जनभाषा के रूप में मान लिया था। भूदेव मुकर्जी नामक तत्कालीन शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर महोदय ने खड़ी बोली को स्वीकृत कराने में पूर्ण योग दान दिया था। क्योंकि उक्त शिक्षा विभाग के उच्च पदाधिकारियों ने हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों का नितान्त अभाव कहकर टालना चाहा था किन्तु भूदेव मुकर्जी ने कई विद्वानों को प्रोत्साहित किया और उन्हीं की प्रेरणा से मुन्शी राधालाल ने 'भाषा विनोदिनी' नामक एक पाठ्य पुस्तक की रचना कर इसका आंशिक अभाव दूर किया साथ-साथ एक हिन्दी शब्दकोष का निर्माण भी किया।

अतः भाषा प्रवर्त्तन के उक्त आन्दोलन में बिहार का मुख्य स्थान है। यहाँ के निवासियों ने मैथिली, भोजपुरी अथवा मगही को जन भाषा रूप में स्वीकृति न दिलाकर खड़ी बोली का महत्व दिया। फिर १८८१ ई० में बिहार बंगाल की संयुक्त सरकार को सरकारी मुहकमे में हिन्दी के लिए लिपि को भी स्वीकृति देनी पड़ी; किन्तु वह शुद्ध देवनागरी न थी, वह थी इसी का विकृत रूप कैथी लिपि।

बिहार में ही उक्त खड़ी बोली, खड़ी बोली न रह कर हिन्दी का स्वरूप ले पाई, जबकि सरकार ने इसे हिन्दी के नाम से स्वीकार कर लिया।

खड़ीबोली का हिन्दी नाम करण चाहे दो शताब्दि पूर्व ही 'हिन्दवी' के नाम से क्यों न हुआ हो, मुकरियों और पहेलियों के साथ-साथ गान रचना करने वाले 'खुसरो' का स्थान हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने दिया हो, किन्तु इसके बाद जब गद्य निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ तब पं० सदल मिश्र को कभी भूला नहीं जा सकता; क्योंकि उनके 'नासिकेतोपाख्यान' का अनुवाद 'चन्द्रावती' को सर्वप्रथम मौलिक ग्रन्थ मानना होगा। 'चन्द्रावती' की भाषा का प्रणयन लगभग सन् १८०० ई० में हुआ था और उसके पश्चात् ही मुन्शी इन्शा उल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी;' लल्लू लाल जी का 'प्रेमसागर' मुन्शी सदासुखलाल का 'सुखसागर' लिखा गया। यद्यपि पं० सदल मिश्र जी की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषा के अधिकांश शब्द उत्तर भारतीय जनता के जीवन में व्यवहृत होनेवाले थे, फिर भी फोर्ट विलियम कालेज के तत्त्वावधान में 'प्रेम सागर' का निर्माण जन भाषा को बिषाक्त करने के निमित्त हुआ था। 'तासी' और गिलक्राइस्ट की विषैली नीति यह थी, कि इस देश में धार्मिक भावना का सहारा लेकर ही भाषा की समन्वयात्मक चेतना अवरुद्ध की जा सकती है; अतः भगवान कृष्ण की गाथा के गाढ़े पर्दे में साम्प्रदायिकता को उभाड़ा जाय। लल्लू लाल जी की भाषा व्रज-भाषा से अस्सी प्रतिशत अनुप्राणित थी; उसमें पण्डिताऊपन ज्यादा था; और हिन्दी को तो सामुदायिक संस्कारों की चेतना जाग्रत करनी थी, जिसमें राष्ट्रियता का गौरव अक्षुण्ण रह सके, प्रत्येक प्रान्त के नागरिक इसे अपना सकें, जो सुबोध और सुगम हो, जिसमें जातिगत, धर्म-गत द्वेष अथवा विभेद फैलने का वीज न रहे। लेकिन 'तासी' और 'गिल क्राइस्ट' की प्रेरणा का मूल कुछ और था—वे चाहते थे कि भाषा सम्बन्धी विरोधी वातावरण उत्पन्न करके बीच के रास्ते अंग्रेज और फ्रेञ्च को इस देश में व्यापक बना डालें। क्योंकि इंगलैंड और फ्रांस दोनों ही देशों की गुलामी का पट्टा भारत के गले में बँधा था। जो अधिक से अधिक मजबूती से बँधा रह सके—हमारी पराधीनता के चाहक इस लक्ष्य पूर्ति के एकान्त इच्छुक थे।

उक्त विषैली नीति का फल भी कुछ ही दिनों बाद प्रकट हुआ। जो बीज बोया गया था, वह पौधे के रूप में लहलहा उठा—सितारे हिन्द राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह जैसे प्रतिभाशाली साहित्य-कारों के बीच गद्य भाषा स्वरूप निर्द्धारण के सिद्धान्त को लेकर एक संग्राम सा छिड़ गया। सितारे हिन्द अरबी-फारसी प्रधान हिन्दी के हिमायती होकर ताल ठोंकने लगे और राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृत निष्ठ हिन्दी के पक्षपाती बनकर!

उस समय एक ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो समन्वयात्मक प्रयत्नों के द्वारा हिन्दी भाषा के दाएँ-बाएँ अङ्गों को प्रहारों से बचाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए कटिबद्ध होता। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आए, उनकी चेष्टाएं भाषा निर्माण से अधिक साहित्य सर्जन में लगी थी; उन्होंने भाषा के जो भी प्रयत्न किए वे अप्रकट रूप से, सितारे हिन्द गुरु थे, अतः धर्म भीरु भारतेन्दु प्रत्यक्षतः उनका विरोध कर भी न सकते थे; राजा लक्ष्मण सिंह वयोवृद्ध थे, उनकी गरिमा भी रक्षणीय ही थी। इसके अतिरिक्त साहित्य में राष्ट्रिय चेतना का जागरण भारतेन्दु की स्वाभाविक वृत्ति का लक्ष्य था; साहित्य मार्ग में रीति युगीन प्रवृत्तियों ने जो बिछलन भर दी थी, उसे अपने 'मण्डल' के सदस्यों के साथ साफ करना भी था, इस लिए साहित्य के काव्यात्मक पक्ष की ओर ही इनका ध्यान प्रमुख रूप से संलग्न था।

ऐसे ही अवसर पर बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री हिन्दी भाषा के समुद्धर्त्ता का रूप लेकर उपस्थित हुए। खत्री जी अपने जीवन के आरम्भ काल से ही समाज सुधार और सेवा की प्रवृत्तियों से भरे थे, उसी भावना से प्रेरणा पाकर हिन्दी सेवा के व्रती बन बैठे। इन्होंने 'संस्कृत-जनित यावनी शब्दकोष' की रचना कर हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले अरबी फारसी के अधिकांश शब्दों का मूल संस्कृत बतला कर एक नूतन मार्ग का निर्देश किया और पहले-पहल उर्दू को हिन्दी की एक शैली की मान्यता दी। इस प्रकार विष के उस पौधे को अधिक डाल-पात फैलाने से रोका। 'उर्दू हिन्दी की सिर्फ एक शैली है,' इस मान्यता का समर्थन फलाङ्गो नामक विद्वान का 'फलाङ्गिया साफिया' नामक शब्दकोष द्वारा (प्रकारान्तर से) हुआ; क्योंकि उसके चौरानब्बे हजार शब्दों में से फलाङ्गो के मतानुसार बत्तीस हजार शब्द हिन्दी के हैं।

खत्री जी का 'संस्कृत जनित यावनी शब्दकोष' का निर्माण मानो सितारे हिन्द और राजा साहब के वैर विरोध मिटाने का केवल प्रयत्न नहीं था, वल्कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठापित करने की अव्यक्त चेष्टा थी। इसके पूर्व हिन्दी के इस सेवक ने भाषा प्रवर्त्तन में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक और दायित्वपूर्ण कार्य किया था; वह था—'हिन्दी व्याकरण' का निर्माण! हालाँकि इनके निर्माए व्याकरण के पहले भी एकाधिक व्याकरण लिखे जा चुके थे, जो संस्कृत व्याकरण या केवल अंग्रेजी व्याकरण का ही अनुसरण करते थे; किन्तु इनका व्याकरण मध्यम मार्गी था, जिसमें शैली संस्कृत की अपनाई गई थी, और नियम अंग्रेजी व्याकरण की अनुकूलता पर आधारित थे। उस युग में इस तरह समन्वय की भावना लेकर कोई दूसरा व्यक्तित्व खत्री जी के अतिरिक्त उपस्थित न हुआ, क्योंकि ये शब्द संरक्षण और वर्त्तन के शैली गत नियम बनाकर भाषा को संकीर्ण मार्ग से प्रशस्त एवं व्यापक क्षेत्र में ले आए। यद्यपि खत्री जी को तत्कालीन हिन्दी सेवी विद्वानों ने समुचित सम्मान न दिया, बल्कि सनकी, खप्ती और पागल की उपाधियों से ही विभूषित करने की चेष्टा की। यदि संस्कृत निष्ट या अरबी-फारसी भरी हिन्दुस्तानी जबान के प्रतिपक्षी विद्वान् खत्री जी के बताए मार्ग से चलते तो निश्चय ही सारा वैमनस्य दूर हो जाता, बाद का हिन्दी-हिन्दुस्तानी का टंटा भी भविष्य के लिए मिट जाता। फिर भी खत्री जी का हिन्दी में व्यवहृत होने वाले अरबी फारसी के शब्दों के हिन्दी करण में सबसे पहला हाथ था। इनके बनाए व्याकरण को भारतवर्ष में चाहे प्रशस्ति न मिली, परन्तु विदेशों में इसकी जितनी सराहना की गई, उतनी हिन्दी के किसी और उस युग के लिखे व्याकरण की नहीं हुई।

सच्चे सेवक को अपने सेवा कार्य से ही मतलव होता है। इस लोक सिद्धान्त के अनुसार अनेक कठिनाइयाँ, कटूक्तियाँ, उपहास सहकर भी राष्ट्रभाषा के मार्ग में आई हुई विघ्न-वाधाओं को दमित-शमित देखकर गद्य को व्यापकता की ओर गतिशील पाकर खत्री जी ने पद्य की ओर प्रधान रूप से ध्यान देना आरम्भ किया, अपना कार्य-क्षेत्र बदल दिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ-साथ बहुतेरे साहित्यकारों ने गद्य की भाषा खड़ीबोली मानली किन्तु पद्य की भाषा व्रजभाषा ही स्वीकृत की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी में कविताएं रचने और नवोदित कवियों को ब्रजभाषा में ही काव्य रचना के लिए ये प्रोत्साहित भी किया करते। खत्री जी ने इस द्वैभाषिक नीति का घोर विरोध आरम्भ किया; इनकी विरोधिता इतनी उग्र हुई कि ब्रजभाषा को खड़ीबोली से भिन्न साबित कर उठे। इनका विचार था कि पद्य और गद्य की भाषा दो न होनी चाहिए। ये समझते थे कि इस तरह ब्रजभाषा को पद्य के लिए समर्थित करने से क्षेत्रीय भाषाओं के पद्यकार अपनी-अपनी मातृ-भाषा की महत्ता को दृष्टिकोण में रखकर अलग-अलग डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाने लग जाएँगे। धीरे-धीरे गद्य के लिए भी उनकी अपनी भाषा ही उपयुक्त क्यों न हो सकेगी। खत्री जी का यह दूरदर्शी दृष्टि कोण सचमुच भावी राष्ट्र के लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण था; क्योंकि प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं में महान् कवि उत्पन्न हो चुके थे। मैथली में—विद्यापति, गोविन्द दास, अवधी में तुलसी-दास; राजस्थानी में— मीरा, आदि, इसी तरह अन्यान्य प्रान्तों में भी और ये जन साधारण के हृदय-हृदय एवं कण्ठ कण्ठ में स्थान पा चुके थे; अतः समस्त भारत के लिए एक भाषा का सपना-सपना ही रह जाता। सामुदायिक समन्वय का ढ़ाँचा ही ढह जाता। आज जिस तरह क्षेत्रीय भाषाओं के पक्षधर हिन्दी विरोधी भावनाएँ अपना रहें हैं, संवैधानिकता की ओट में राष्ट्रीयता को भी ताक पर रख देने से नहीं चूकते हैं, उस समय की द्वैभाषिक शैली अपना लेने के कारण वह विरोध कितना उग्रतम होता !

खत्री जी ने 'गद्य और पद्य की भाषा एक हो! इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो-जो कार्य किया, उसमें सफलता मिलती गई। इनके समर्थकों की संख्या भी बढ़ने लगी। यहाँ तक कि पं० श्रीधर पाठक जो पहले खड़ी बोली को कविता योग्य भाषा ही न समझते थे, ब्रजभाषा के कवि समाज में प्रमुख कवि माने जाते थे, वे भी खत्री जी के विचारों से प्रभावित हुए विना न रह सके। इनके समर्थकों में 'भारत मित्र सम्पादक बाबू बाल मुकुन्द गुप्त, बाल कृष्ण भट्ट, पं० अम्बिका दत्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यास, पं० चन्द्रशेखर धर मिश्र, पं० भुवनेश्वर मिश्र, महेश नारायण और राय सोहन प्रसाद प्रमुख थे। स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जो आधुनिक हिन्दी के पितामह माने जाते हैं, खत्रीजी के द्वारा सञ्चालित उक्त आन्दोलन के उत्तराधिकारी ही तो थे।

खत्री जी ने खड़ीबोली में पद्य की शैली स्वयं निर्मित की, और लोगों को प्रोत्साहित किया, खड़ीबोली में कविता करने वालों को एक-एक कविता के लिए पुरष्कृत किया, इसके विरोधियों को अपनी युक्तियों और तर्कों द्वारा बराबर मुंह की खाने को मजबूर किया, पत्र-पत्रिकाओं में इसके प्रचार प्रसार के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। आज जिसके फलस्वरूप खड़ीबोली नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास विषयक रचनाओं में स्मरण मात्र के लिए ही व्यवहृत होता है। आज गद्य और पद्य दोनों की भाषा हिन्दी है। पं० प्रताप नारायण मिश्र ने कभी लिखा था—नारा बुलन्द किया था—

"जो चाहो भारत कल्याण !
रटो निरन्तर एक जबान !
हिन्दी – उर्दू –हिन्दुस्थान !"

इस नारे में भारत राष्ट्र की सच्ची भाषा निश्चित रूप से बढ़ती गई थी, किन्तु इस में भावुकता वादी दृष्टिकोण से यद्यपि कोई दोष न था, फिर भी बुद्धिवादी विचारकों के लिए साम्प्रदायिकता की उत्कट गन्ध विद्यमान थी ही, हिन्दू और हिन्दुस्थान शब्द रूपी चम्पा के फूल किसी किसी व्यक्ति में पीनस रोग रूप कटुता उत्पन्न करने को बाध्य थे। खत्री जी ने 'हिन्दू' शब्द हटाकर और 'हिन्दुस्थान' के थकार को हटाकर परम्परा से व्यवहृत होने वाला तकार ही रहने दिया, वह शब्द फिर से हिन्दुस्तान ही रह सके, ऐसी सजग चेष्टा बराबर रही। अभी जो हिन्दी सम्प्रदायवाद विरहित भावना से अग्रसर हो रही है, फूल-फल रही है, अनेक अनेक नवल चेतनाएँ ग्रहण करती जा रही है, अरबी, फारसी, पुर्त्तगाली, अंग्रेजी, फ्रेञ्च आदि भाषाओं के अगणित शब्दों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को–जिसमें भाव और अर्थ गाम्भीर्य विद्यमान है आत्मसात् करलेने उनके तद्धवरूप जनता के बीच से चयन करने में समर्थ हो सकी है, उसके लिए खत्री जी की नीति ही श्लाघ्य है; क्योंकि उन्होंने समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया था। भलेही इनको हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने समुचित रूप से याद नहीं किया; लेकिन आगे जब किसी दिन इतिहासानुकूल समाज और भाषा के तत्त्ववेत्ता वैज्ञानिक आधार पर संवीक्षण करेंगे उस समय राष्ट्रभाषा के सिलसिले में सारी बातें बिलकुल स्पष्ट हो जाएँगी। यह भी भली भाँति प्रकट हो जाएगा कि प्रशंसोपलब्धि में सेवकत्व को कोई निष्ठा नहीं रहती वह समाज से लेना नहीं, वरन् केवल देना ही धर्म मानता है। हमारे देश में ऐसे अनेक देशभक्त हो चुके हैं; जिन्होंने सेवा या भक्ति की बाहरी चादर शरीर पर बिना ओढ़े ही, जनता से यश का मुकुट पाने की अभिलाषा न रखकर गीता द्वारा उपदिष्ट निष्काम कर्म योग में आत्म सन्नियोग किया है।

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी हो; इसमें जितनी परिपाक-शक्ति है, उतनी निश्चय ही अन्य किसी क्षेत्रीय भाषा में नहीं पाई जाती; यह सर्वजन सुलभ हो, सर्वतः सरल, सर्वतः सुबोध,– इस प्रयत्न में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अथक परिश्रम किया। भाषा—परिमार्जन, प्रसरण एवं विस्तरण के लिए आजीवन सचेष्ट रहे, इसमें किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं। किन्तु जहाँतक प्रवर्त्तन की बात आती है, वहाँतक खत्री जी का हाथ प्रमुख रूप से रहा. इस मान्यता में हिन्दी के ऐतिहासिक अनुशीलन करने वालों को सन्देह हो! लेकिन अनुशीलकों ने खत्री जी के प्रवर्त्तन-कार्य को सम्भवतः इसलिए छोड़ दिया, कि वह अधिक परिश्रम साध्य होता। बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री राष्ट्रभाषा के प्रवर्त्तन में सबसे पहले समन्वय-कारी की हैसियत रखते हैं। उर्दू को शैली की मान्यता देते हैं; शब्द-कोष के निर्माता और वैयाकरण बनकर शब्दबोध कराते हैं। भारतेन्दु से लेकर पं० श्रीधर पाठक बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' बाबू श्याम सुन्दर दास, और आचार्य शुक्ल जी को खड़ीबोली में काव्य रचना के लिए बराबर सचेत करते हैं; ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सबके सब गद्य और पद्य के लिए द्वैभाषिक धारणा के समर्थक ही नहीं रचनाकार भी थे। खत्री जी अपनी कर्त्तव्य-भूमि में एक कृषक की भाँति राष्ट्रभाषा के बीज को गोड़ने योग्य क्षेत्र बनाने से लेकर, भारत वासी सभी जातियों के मनोभावों को (खासकर हिन्दू और मुसलमान) व्यक्त करने योग्य भाषा रूप पौधे को विकसित करने, उन्नत करने के लिए कर्मनिष्ठा के साथ लगे रहे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत के इन्दु थे। उन्होंने आधुनिक हिन्दी भारती को उन्नत करने में कोई कोर कसर नहीं की। सितारेहिन्द (राजा शिवप्रसाद) की झिलमिलाती रोशनी को अपनी चौदहवींकी चाँदनी में समेट लिया। नई जिन्दगी को नई रोशनी दी—सौम्य, स्निग्ध, मनोमं हक! लेकिन उन्होंने हृदय की ही दुनिया बसाई थी। भारत के—गुलामी की जञ्जीर में जकड़े हुए प्राणों की मार्मिक अनुभूतियों को, कसमसाती भावनाओं को नाटक और कविताओं में व्यक्त किया। उनकी प्रवृत्तियाँ निश्चय ही भावात्मक थीं। सब मिलाकर भारतेन्दु कवि थे, हृदय वादी थे। भारतेन्दु का पूर्ववर्त्ती काल रीति प्रधान था; जिसमें कविता ही कविता भरी पड़ी थी; इनकी चेतना पर काव्य का प्रभाव अधिक पड़ा। इनके पिता (गिरिधर दास के उपनाम से) बाबू गोपाल दास जी भी कविता करते थे; अतः इन्हें कविता मानो विरासत में मिली। इन पर लक्ष्मी की कृपा थी अनेक पत्र स्वयं प्रकाशित और सम्पादित करते थे।

लेकिन खत्री जी एक साधारण दूकानदार की सन्तान थे; जिनका परिवार छोटा न था; जिनके प्रत्येक भाई को व्यापार के अतिरिक्त अन्य जीविकाओं का सहारा लेना पड़ा। स्वयं खत्री जी आरम्भ में मिडल स्कूल के शिक्षक रहे, फिर कलक्टरेट के किरानी बनकर जीवन यापन किया। इसलिए खत्री जी पर सामयिक परिस्थितिगत भावनाओं का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभाव अधिक रहा। इन्हें सेवासमिति और समाज सुधार के कार्यों से अधिक सम्पर्क रहने के कारण सेश जनित कर्त्तव्य परायणता की चाट सी लग गई थी; उन कार्यों से दूर रहना कठिन था। पारिस्थितिक अर्थ प्रधान समस्याओं का चिन्तन जिनकी मूल चेतना हो, और वही बिरासत में प्राप्त हो, तो वह व्यक्ति हृदय प्रधान नहीं हो पाता। खत्री जी की—भाषा के स्वरूप निर्द्धारण, भाषा परिष्कार एवं संवर्द्धन की समस्त चेष्टाओं में मस्तिष्क वादी अपितु बुद्धिवादी प्रवृत्तियाँ ही प्रबल थीं। ये सामयिक स्थितियों पर अधिक विचार करते थे, इनके सामने तथ्य थे। तथ्य तर्क, युक्तियों और प्रमाणों पर निर्भर होता है. और इन सबका उद्गम स्थान बुद्धि है। खत्री जी की आरम्भ से अन्त तक की कार्यावली बौद्धिकता से अनुप्राणित दीखती है। इन्होंने अपने लक्ष्य निश्चित किए; और वे उसी के आधार पर खड़ी बोली का मार्ग प्रशस्त करने में आजीवन लगे रहे।

जहाँ भारतेन्दु ने हिन्दी देह को मांसलता, पुष्टि और गठन दी; वहाँ खत्री जी ने हिन्दी शरीर की रीढ़ मजबूत की; हड्डियों की ताकत बढ़ाई और दृढ़ता देने की चेष्टा की है। युगान्तर कारी प्रवृत्तियाँ भारतेन्दु और खत्री जी दोनों में विद्यमान थीं, फिर भी क्षेत्र की दृष्टि से भारतेन्दु का कार्य साहित्य निर्माण रहा और उस साहित्य निर्माण के पीछे खत्री जी ने भाषा प्रवर्त्तन का कार्य एक कर्त्तव्य शील राष्ट्र सेवक के नाते किया। हाँ, रचना के बाद ही, आलोचन, विमर्शन, सम्पादन एवं परिष्कार का अवसर आता है। अतएव भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी के निर्माता हैं; तो खत्री जी हिन्दी भाषा के प्रवर्त्तक! खड़ी बोली गद्य-पद्य दोनों की एक भाषा रूप में प्रवर्त्तित हुई और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका परिष्कार तथा सम्पादन किया।

भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के आरम्भ में जिन महारथियों ने अपने आपको समर्पित किया था; १८५७ वाली क्रान्ति की ज्वाला जिस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राष्ट्रयज्ञ के द्वारा भड़काई गई थी; उसे कूटनीति निपुण विदेशियों ने पूर्ण न होने दिया; हमारे राष्ट्र के प्राणों को मोहनिद्रा से जागरणाभिलाषी होतागण जब अपने उद्देश्य की पूर्त्ति न कर सके तो स्वयं हव्य बन गए। लेकिन उस स्वतन्त्रता रूप आकांक्षित फल के बाधक केवल विदेशी ही नहीं साम्प्रदायिक विभिन्नताएँ थीं, धार्मिक रूढ़ियाँ थीं, प्रान्त-प्रान्त की दीवारें थीं और सबसे बड़ी बाधा भाषा की अनेकता थी। सिर्फ इसी एक हिन्दी भाषा के साधे सब के सब सध जाते। इस आन्दोलन का श्री गणेश १८७० ई० में बिहार में हुआ और १९५८-ई० में स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् दिल्ली के आस पास बोली जाने वाली खड़ीबोली दिल्ली में राष्ट्रभाषा के पद पर समासीन हुई। स्वतन्त्र भारत के संविधान ने हिन्दी को अपने शीर्ष की दीप्ति कहकर घोषित किया।

स्वाधीनता के आदिम आन्दोलक नाना साहब, ताँत्या टोपे, कुवर सिंह, लक्ष्मी बाई, बहादुर शाह इन पञ्च महारथियों का सपना १९४७ के १५ अगस्त को जाग्रत संसार में ससमारोह उतर आया; इन महान् हुतात्माओं को भारत राष्ट्र के स्वाधीन नागरिकों ने समुचित प्रशस्तियाँ प्रदान कीं। किन्तु जिस हिन्दी भाषा को विदेशियों ने प्रथम जनक्रान्ति की तरह पहले पदमर्दित करने की चेष्टा की, उसके बाद भी जब उनकी चाल खाली गई तो वे साम्प्रदायिक, धार्मिक, सामाजिक तथा जाति वाद के भूल-भुलैयों में डालकर उसे विनष्ट कर देने को आमादा हुए फिर भी हमारे सजग, सचेत जिस महामानव ने भारत की राष्ट्रियता को विदेशियों के फन्दे से छुड़ाकर दलदलों, गहन कान्तारों, मरुस्थलों, सघन कण्टकमय मार्गों से निकाल कर अनेक पारस्परिक विभिन्नताओं को मिटाकर एक तान करने में तन-मन-धन लगा दिया; अपने प्राणों को घुला दिया; उस अयोध्या प्रसाद खत्री को आरम्भ से अन्त तक हमारे राष्ट्रभाषा के इदानीन्तन गौरव गुरुओं ने एक क्रीतदास की भाँति नगण्य ही तो माना। वह साधु पुरुष अपने जीवन के अधिकांश क्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राष्ट्रियता के जागरण में लगाए रहा, परन्तु इस आत्मदान का मूल्य किसी से और कभी नहीं माँगा। ठीक हीं तो—

"वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै,
नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारणें,
साधुन धरा शरीर।"

मगर क्या उक्त हिन्दी के कर्णधारों की तरह हम साहित्य सेवी भी खत्री जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन को विस्मृत करदें ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रो० कामेश्वर शर्मा

खड़ीबोली पद्य का चाणक्य

अबतक के प्रकाशित, हिन्दी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी ग्रंथों को पढ़ने से जो कतिपय आश्चर्यजनक तथ्य हमारे सामने उपस्थित होते हैं, उनमें पहला यह है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास, अपनी समग्रता में, अभी तक बोलियों का ही इतिहास है। चाहे वह प्रारम्भ की मैथिली-मगही और राजस्थानी हो, या मध्यकाल की अवधी और ब्रजबोली या आधुनिक काल की खड़ीबोली—हैं ये सब बोलियाँ ही। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार, इन बोलियों का उल्लेख इसलिए नहीं करते कि वे हिन्दी-प्रदेश के अंतर्गत रही हैं, बल्कि इसलिए कि अपने साहित्य की प्राचीनता की खोज में उन्हें वहाँ कतिपय ऐसी प्रतिभाओं के दर्शन हुए हैं जो उनके साहित्य की आयु को अतीत में बहुत दूर तक खींच कर ले जा सकी हैं। विडंबना यह है कि उन प्रतिभाओं के बाद भी उपर्युक्त बोलियों में जो अभिव्यक्ति हुई है, जो साहित्य रचा गया या लिखा जा रहा है, उसका निर्देश करना वे साहित्य के लिए घातक समझते रहे हैं। हिन्दी साहित्य के किसी भी अध्येता को यह देख कर आश्चर्य होता है कि विद्यापति से लेकर आज तक अप्रतिहत रूप से विकसित समस्त मैथिली साहित्य में से सिर्फ विद्यापति ही हिन्दी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य के इतिहास में दिखायी पड़ते हैं। साधारणतः यह भ्रम पैदा हो सकता है कि विद्यापति के बाद मैथिली बोली और वीरगाथा काल के बाद राजस्थानी बोली, या तो एक-ब-एक समाप्त हो गयीं, नहीं तो मध्यकालीन अवधी और ब्रजबोली में बदल गयीं, और अब, उनकी न तो कोई स्थिति है और न उनमें कोई साहित्य लिखा जा रहा है। ठीक यही भ्रम खड़ी बोली का साहित्य पढ़ने के क्रम में अवधी और ब्रज-बोली के सम्बन्ध में पैदा हो सकता है। किसे ज्ञात है कि ब्रजबोली में रत्नाकर 'गंगावतरण' लिख रहे थे, तभी मैथिली में चन्दा झा महाकाव्य तैयार कर रहे थे। आधुनिक काल में ही जब खड़ी बोली पद्य, द्विवेदी जी ऐसे डिक्टेटर का कंधा पकड़ कर भी लड़खड़ा रहा था, तभी भोज-पुरी में उच्च कोटि के ऐसे ऐसे राष्ट्रीय गीत लिखे जा चुके थे जो कांग्रेस के बड़े-बड़े अधिवेशनों में भी समवेत स्वर से गाये जाते थे। हिन्दी अपने नागार्जुन को दरभंगे में भी पहचान लेती हैं पर मैथिली के दुबले-पतले 'यात्री' को वह इलाहाबाद में भी नहीं पहचानती। इससे बढ़ कर और असंगति क्या हो सकती है?

मुस्लिम काल के अंत में, ब्रज बोली पर जो खड़ी बोली सवार हुई तो हिन्दी साहित्य के इतिहास में पहली बार चार नयी बातें दिखाई पड़ीं:—पहली यह कि मैथिली, राजस्थानी, अवधी और ब्रज आदि बोलियाँ जहाँ कि पद्य के साथ आयी थीं, वहाँ खड़ी बोली गद्य के साथ आयी। हिन्दी साहित्य के अध्येता को आश्चर्य होता है कि जैसे किसी धमाके के साथ गद्य का प्रचार हो गया हो। अब हिन्दी साहित्य के इतिहासकार खड़ी बोली के ही गद्य को हिन्दी का गद्य समझने लगे, और बोलियों में जो गद्य लिखा जा रहा था, वह हिन्दी का गद्य नहीं था। क्या तुक है कि खड़ी बोली में लिखने के कारण गया के राधा-कृष्ण और बनारस के बेढब हिन्दी के श्रेष्ठ कथाकार माने जायँ, पर मैथिली में लिखने के कारण उनसे भी श्रेष्ठ हरिमोहन झा का उल्लेख तक न किया जाय?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरी यह कि मैथली, राजस्थानी, व्रज, अवधी आदि बोलियाँ जहाँ कि धर्म और राज्य के आश्रय में साहित्यिक स्तर पा सकीं, वहाँ खड़ी बोली व्यापारियों और कर्मचारियों के आश्रय में पल्लवित हुई। हिन्दी साहित्य के अध्येता को पुनः आश्चर्य होगा कि कम से कम शाहजहाँ के समय से ही, राजस्थान से लेकर सुदूर बिहार तक के मारवाड़ी, व्यापार के क्षेत्र में अपनी बोली में काम चला रहे थे। पर, इतिहास में इस तथ्य पर प्रकाश डालने का उपक्रम आज तक नहीं किया गया।

तीसरी यह कि मैंथिली, राजस्थानी, व्रज और अवधि आदि बोलियों में गद्य का प्राचीन नमूना देख कर हममें जहाँ शोध-वृत्ति जग जाती है वहाँ खड़ी बोली में पद्य के प्राचीन से प्राचीन नमूने प्राप्त करने की वृत्ति जग पड़ी। इसके लिए खुसरो और कबीर तो क्या, हम गोरखनाथ तक दौड़ पड़े। उपर्युक्त बोलियों के ठीक विपरित, खड़ी बोली में पद्य का इतना अभाव था (?) कि उनके लिए हमें आन्दोलन तक करना पड़ा तू-तू मैं मैं तक उतर आना पड़ा।

और चौथी, पर सबसे आश्चर्य जनक बात यह थी कि खड़ी बोली थी तो पश्चिम की, पर गद्य या पद्य—दोनों में इसके प्रयोग और प्रचलन के आन्दोलन का श्री गणेश पूर्व में हुआ—यानी कलकत्ते से बनारस तक के भू-भाग में।

अयोध्या प्रसाद खत्री, हिन्दी साहित्य के इतिहास की इन असंगतियों का उत्तर देने के लिए सबसे पहले सन्नद्ध हुए थे।

मैंने कहीं लिखा है—खत्री जी, खड़ीबोली पद्य के मजनूँ थे। व्रजभाषा को ही कविता की भाषा माननेवाले भारतेन्दु के स्वर्गवास को दो वर्ष भी नहीं बीते थे, खड़ीबोली में पद्य लिखने को 'Impossible task' और उसके प्रयत्न तक को 'must be unsuccessful, करार देनेवाले ग्रियर्सन साहब पटना के मजिस्ट्रेट के रूप में बिहारी बोलियों का अध्ययन कर ही रहे थे और खड़ीबोली कविता को 'शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे' कह देनेवाले प्रतापनारायण मिश्र अभीतक ब्राह्मण के संपादक बने ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे कि खत्री जी खड़ीबोली पद्य का पहला भाग लेकर उपस्थित हुए। इसमें पटना-निवासी बाबू महेशनारायण की वह सीधी-सादी रचना भी है जो 'बिहार बन्धु' में १८८१ में ही प्रकाशित हुई थी—

हाय शादी हुई थी,
बेहोश जब मैं थी।
मैं सोलह बरस की,
वह अस्सी बरस के।
देख इनको मैं रोती,
देख हमको वह हंसते॥ ... ...

मरही गये वह बिचारे उसी दिन हो गई मैं विधवा कुमारी।
माता मेरी संतुष्ट हुई और घर लाई वह दौलत सारी॥

खत्री जी की सूक्ष्म दृष्टि हिन्दी काव्य के अंधकारपूर्ण भविष्य को चीरती हुई वहाँ तक पहुँची थी, जहाँ भारतेन्दु की किरणें, ग्रियर्सन का विश्लेषण और मिश्र जी के व्यंग्य की नोंक भी नहीं पहुँच सकी थी। खत्री जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के सामर्थ्य का आकलन कर ब्रजभाषा और अवधी के समस्त साहित्य को वहिष्कृत कर दिया था। हिन्दी के प्राध्यापकों का अनुभव है कि हिन्दी के आज के छात्र हिज्जे और व्याकरण सम्बन्धी गलतियाँ इसलिए करते हैं कि बचपन से ही उनका साबका अवधी और ब्रजभाषा के उन कवियों से पड़ता है जिन्होंने कविता करने का अर्थ भाषा को तोड़ना और मरोड़ना समझ लिया था।

—"जैसा वाक्य मुख से निकला वैसा ही लिख दिया, दीर्घ को ह्रस्व कर दिया, युक्ताक्षर को असंयुक्त और असंयुक्त को युक्त बना दिया। जो किसी विभक्ति ने कुछ गड़बड़ किया तो उसे भी उड़ा दिया। स्त्रीलिंग को पुलिंग और पुलिंग को स्त्रीलिंग, एकवचन को बहुवचन और बहुवचन को एकवचन जैसा जी में आता था, करते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनको ये कविताएँ सुनायी जाती थीं, वे भी आशय के चमत्कार में भूल जाते थे, भाषा की अशुद्धता पर ध्यान ही नहीं देते थे।......यहाँ तक कि इन्होंने (आधुनिक कविताओं ने) प्राचीन कवियों की पुरानी भाषा का पिंड भी न छोड़ा। अब ये कविताएँ लड़कों को पढ़ना मानो साक्षात् उनकी बोलचाल बिगाड़ना है।''—(बिहारबंधु' १८८६ ई०) यह वह युग था जब भारतेन्दु का प्रत्येक कथन वेद वाक्य माना जाता था और उनके प्रशंसकों की संख्या अपरिमित थी। भारतेन्दु हिन्दी के उन्नायक माने जाते थे और इसलिए श्रद्धेय थे। खत्रीजी की गर्वोक्ति गूँजी—''बाबू हरिश्चन्द्र ईश्वर नहीं थे। उनको शब्द-शास्त्र (फीलालोजी) का कुछ भी बोध नहीं था। यदि फीलालोजी का ज्ञान होता तो खड़ीबोली में पद्य-रचना नहीं हो सकती है, ऐसा नहीं कहते।''—(८ अप्रैल १८८८, हिन्दोस्तान—एक अगरवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना)

खत्रीजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का काल-विभाजन नये सिरे से किया। १—लल्लूलाल की हिन्दी, २—सितारे हिन्द और भारतेन्दु की हिन्दी ३—श्रीधर पाठक की हिन्दी। लल्लूलाल की हिन्दी को उन्होंने उर्दू का ब्राह्मण-कृत संस्कार माना और घोषणा की 'तुलसी-सोना मुँह में लेकर लल्लू जी ने मूठी जबान में प्रेमसागर लिखा है और पद्य ब्रजभाषा का है।' दूसरे काल की हिन्दी फारसी-अरबी-बहुल हिन्दी है, और पद्य ब्रजभाषा के ही रहे। ''तीसरे काल थी हिन्दी में पद्य की भाषा पाठकजी ने खड़ीबोली कर देने की चेष्टा की है और यह आशा है कि हो जायगी।'' खत्रीजी महावीरप्रसाद द्विवेदी के अग्रदूत थे। उनका 'खड़ीबोली का पद्य' 'कविता-कलाप' का रास्ता साफ कर चुका था।

खत्रीजी ने इसके लिए पुरस्कार देकर, मिन्नतें कर, लोगों से खड़ीबोली में पद्य लिखवाये। यद्यपि उन्होंने स्वयं कुछ पद्य लिखे थे, पर किसी भी संग्रह में उन्होंने उन्हें स्थान नहीं दिया, और न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनका उल्लेख कहीं किया। इतना निर्मोही था यह पुरुष। मुझे पता नहीं कि भारतीय इतिहास में चाणक्य के अतिरिक्त इतना निस्पृह, निर्मोही और वीतरागी व्यक्ति भी कोई हुआ है। चाणक्य ने संपूर्ण भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में आबद्ध करने का सबसे पहला ऐतिहासिक प्रयत्न किया था. खत्रीजी ने भी राजस्थान से विहार तक के भूमि-भाग को साहित्यिक दृष्टि से एक बनाने वाली खड़ीबोली के पद्य वाले बिखरे सूत्र को समेट कर उसे दृढ़ बनाने का निःस्वार्थ संकल्प किया था। खत्रीजी खड़ीबोली पद्य के चाणक्य थे, और श्रीधर पाठक थे, चन्द्रगुप्त। आचार्य शुक्ल लिखते हैं—"इसी प्रकार खड़ीबोली के पक्ष में जो राय मिलती, वह भी उसी पोथी में दर्ज होती जाती थी। धीरे-धीरे एकबड़ा पोथा हो गया जिसे बगल में दबाए वे जहाँ कहीं हिन्दी के संबंध में सभा होती, जा पहुँचते। यदि बोलने का अवसर न मिलता या कम मिलता तो व बिगड़कर चल देते थे।"

दुःख है कि अपने जीवन में यह व्यक्ति अपनी वह खुली हुई शिखा, फिर न बाँध सका, जो 'कामायनी' के शिखर पर प्रसाद की कोमल उंगलियों द्वारा बाद में गँठिया दी गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारा आगामी प्रकाशन

खड़ीबोली कविता के प्रवर्त्तक अयोध्या प्रसाद खत्री के

महाप्रयाण (४ जनवरी १९६० ई०) के अवसर पर

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्यकार

श्री उमाशंकर की सिद्धहस्त कृती

अयोध्या प्रसाद खत्री: व्यक्तित्व और कृतित्व

अपने ढंग की प्रथम पुस्तक

अध्याय—सामान्य परिचय,-वंश बाल्यकाल, अध्ययन, महान् स्वयंसेवक, आदर्श पुस्तक विक्रेता, सुयोग्य शिक्षक, कर्मठ पेशकार, समाज-सुधारक, उदारचेता सनातनी, साहित्य स्रष्टा, व्यक्तित्व विश्लेषण।

अध्याय—हिन्दी सेवा और उसकी उपलब्धियाँ—राष्ट्र भाषा के रूपनिर्माता, स्कूलों और कचहरियों में हिन्दी प्रवेश के हिमायती, साहित्य सम्मेलन के प्रथम विचारक, अनेक हिन्दी संस्थाओं के संस्थापक।

अध्याय—हिन्दी खड़ीबोली पद्य के प्रवर्त्तक—

अध्याय—खत्री जी और भारतेन्दु हरिश्चन्द, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, अम्बिकादत्त व्यास, ग्रियर्सन, पिन्कोट, ओल्डम, आदि।

अध्याय—खत्री मन्डल के कवि: श्रीधर पाठक, महेशनारायण, चंद्रशेखरदत्त मिश्र, लक्ष्मी प्रसाद, भुवनेश्वर मिश्र, आदि खड़ीबोली कविता के पुरस्कर्त्ता कवियों की समीक्षात्मक विवेचना।

अध्याय—खत्री जी की साहित्यिक कृतियों का मूल्याङ्कन

अध्याय—खत्री-युग : हिन्दी साहित्य में स्थान।

मूल्य पाँच रुपये मात्र

प्रकाशक

अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति-समिति

विश्लेषण-कार्यालय

साहुरोड, मुजफ्फरपुर (बिहार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi